हिन्दी संस्करण—प्रथमावृत्ति संवत् २०२८ वि०

*

अनुवादक—श्री सोहनलाल पटनी
एम.ए. (संस्कृत, हिन्दी)
हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय, सिरोही (राज०)

*

प्राप्ति स्थान :

१. मंगल प्रकाशन मन्दिर
पो० कड़ी (उत्तर गुजरात)

२. सरस्वती पुस्तक भण्डार
रतनपोल, हाथीखाना,
अहमदाबाद नं० १

३. सोमचन्द डी. शाह, पालिताणा, (सौराष्ट्र)

४. सेवन्तीलाल वी. जैन
२० महाजन गली, पहलामाला
झवेरी बाजार, बम्बई नं० २

५ ललितकुमार गोरधनभाई
शिवगंज (राजस्थान)

*

अक्षरसंधान—अर्चना प्रकाशन
१, मेहराहाउस, कालाबा
अजमेर

मुद्रक—जॉब प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर

भूमिका

परमेष्ठि नमस्कार विश्वप्रेम का प्रतीक है। परमेष्ठि भगवान् सकल विश्व पर निष्काम प्रेम एवं निष्काम करुणा भाव रखते हैं। अत. उनके प्रति किया गया नमस्कार विश्व-प्रेम का ही प्रतीक है। नमस्कार द्वारा परमेष्ठि भगवान के प्रति दर्शित विनय समग्र विश्व के जन्तुओ के प्रति प्रेम का प्रतीक है। विश्वप्रेमियो के प्रति अविनय वैर एवं द्वेषभाव का चिह्न है। विश्वप्रेम अमृत है। अत. नमस्कार द्वेषभाव-रूपी विष का प्रतिकार है, अशुभ राग-ज्वर का विनाशक है। विश्वप्रेम एवं विश्वप्रेमी दोनो के प्रति प्रेम बताने वाले, प्रेम जगाने वाले तथा अशुभ राग-द्वेष का विशोधन करने वाले परमेष्ठि नमस्कार को शास्त्रकारो ने जगत की माता अथवा पुण्य के जनक की उपमा प्रदान की है। परमेष्ठि नमस्कार के प्रति आदर भाव सुख का उत्पादक है एवं सर्व जगत के प्राणियों का रक्षक है। अनादरभाव अपने ही सुख का भक्षक है। सकल जगत के सुख के लिए ही नही किन्तु अपने स्वयं के सुख के लिए श्री परमेष्ठि नमस्कार सेवनीय है। सभी इसके सेवन से सुख, सौभाग्य एवं सद्गति पर्यन्त मुक्ति-रमणी के परमसुख प्राप्त करें, यही एक शुभाभिलाषा !

अनन्तचतुर्दशी
संवत् २०२८

—भद्रङ्कर विजय

श्री पंचपरमेष्ठि नमस्कार महामंत्र

*

नमो अरिहंताणं
नमो सिद्धाणं
नमो आयरियाणं
नमो उवज्झायाणं
नमो लोए सव्वसाहूणं
एसो पंचनमुक्कारो
सव्वपावप्पणासणो
मंगलाणं च सव्वेसिं
पढमं हवई मंगलं

महामंत्र की अनुप्रेक्षा

प्रथम किरण

अनुक्रम

महामंत्र की अनुप्रेक्षा

मन का बल मंत्र से विकसित होता है।

नमस्कार मनुष्य की स्वय की पूंजी है। नमन करना ही मानवमन एव बुद्धि का तात्त्विक फल है। नमः देवी गुण एव आध्यात्मिक सम्पत्ति है। दूसरो के गुण ग्रहण की शक्ति नमस्कार मे निहित है। शरीर को मनसे अधिक महत्त्व नहीं मिलना चाहिए क्योकि शरीर रथ है एव मन अश्व है। मन रूपी अश्व को शरीर रूपी रथ के आगे जोतना चाहिए।

मन द्वारा ही तत्त्व की प्राप्ति होती है। शाश्वत सुख एव सच्ची शान्ति अन्तर्मन से प्राप्तव्य है। हाथी का शरीर बडा एव वजनदार होता है परन्तु वह कामी होता है। सिंह शरीर छोटा एव हल्का होते हुए भी हाथी की अपेक्षा काम का विजेता होता है। अत सिह हाथी को भी जीत लेता है। मनुष्य का मन सिंह से भी अधिक बलवान होने से वह सिह को भी वश मे कर के पिंजरे मे डाल देता है।

मन का बल मत्र से विकसित होता है, मत्रो मे सर्वश्रेष्ठ नमस्कार मत्र है। उससे काम, क्रोध, लोभ, राग, द्वेष एव मोहादि आन्तरिक शत्रु जीते जाते हैं।

नमस्कार मत्र मे पाप से घृणा है एव पापी के लिए दया है। पाप से घृणा आत्मबल का वर्द्धन करती है, नम्रता एव निर्भयता लाती है। पापी से घृणा आत्मबल को कम करती है, अहकार एव कठोरता लाती है। सच्चा नमस्कार आत्मा मे प्रेम एव आदर बढाता है, स्वार्थ एव कठोरता का त्याग करवाता है।

जितना अहकार होगा उतना ही सत्य का पालन कम

होगा। जितना कम सत्य का पालन होगा उतनी ही जितेन्द्रियता कम होगी तथा काम, क्रोध एवं लोभ का बल अधिक होगा। नमस्कार से वाणी की कठोरता, मन की कृपणता एव बुद्धि की कृतघ्नता नष्ट होती है तथा क्रमश. कोमलता, उदारता एव कृतज्ञता विकसित होती है।

नमस्कार द्वारा मनोमय कोष की शुद्धि

नमस्कार मे न्याय है, सत्य है, दान है एव सेवाभाव निहित है। न्याय मे क्षत्रियत्व है, सत्य है एव उसके बहुमान मे ब्रह्मज्ञान है। दान एव दया मे लक्ष्मी एव व्यापार की सार्थकता है, सेवा एव शुश्रूषा मे सतोष गुण की सीमा है। नमस्कार द्वारा क्षत्रियो का क्षत्रियत्व, ब्राह्मणो का ब्रह्मज्ञान, वैश्यो का दान-गुण एव शूद्रो का सेवागुण एक साथ सार्थक होते हैं। समर्पण, प्रेम, परोपकार एव सेवा भाव ही मानवमन एव विकसित बुद्धि के सहजगुण है।

मनुष्य जन्म को श्रेष्ठ बनाने वाली यदि कोई वस्तु है तो वह पवित्र बुद्धि है। जीव, देह एव प्राण तो प्राणी मात्र में हैं पर विकसित मन एव विकसित बुद्धि तो मात्र मनुष्यो मे ही है। सब कुछ हो पर सद्बुद्धि नही हो तो सब का दुरुपयोग हो दुर्गति होती है। दूसरा कुछ भी नही हो पर यदि सद्बुद्धि ही हो तो उसके प्रभाव से सब कुछ प्राप्त हो जाता है।

मानव मन मे अहकार एव आसक्ति ये दो बडे दोष है। दूसरो के गुण देखने से एव स्वयं के दोष देखने से अहकार एवं आसक्ति नष्ट हो जाते हैं। नमस्कार दूसरो के गुण ग्रहण करने की एव स्वय के दोषो को दूर करने की क्रिया है। नमस्कार से सद्बुद्धि का विकास होता है एव सद्बुद्धि का विकास होने से सद्गति हस्तामलकवत् हो जाती है।

नमस्कार रूपी वज्र अहकार रूपी पर्वत का नाश करता है। नमस्कार मानव के मनोमय कोष को शुद्ध करता है। अहकार का स्थान मस्तक है। मनोमय कोष शुद्ध होने से अहकार अपने आप विलीन हो जाता है।

नमस्कार मे शुभकर्म, उपासना एवं ज्ञान इन तीनों का सगम है। शुभकम का फल सुख, उपासना का फल शान्ति एव ज्ञान का फल प्रभुप्राप्ति है। नमस्कार के प्रभाव से इस जन्म मे सुख, शान्ति एव जन्मान्तर मे परमात्मपद की प्राप्ति सुलभ होती है। कर्म-फल मे विश्वासात्मक बुद्धि ही सद्बुद्धि है। सद्बुद्धि शान्तिदायक है। नमस्कार से उसका विकास होता है एव उसके प्रभाव से हृदय मे प्रकाश उद्बुद्ध होता है। ज्ञान विज्ञान का स्थान बुद्धि है एव शान्ति-आनन्द का स्थान हृदय है। बुद्धि का विकास एवं हृदय मे प्रकाश ही नमस्कार का असाधारण फल है।

बुद्धि की निर्मलता एवं सूक्ष्मता

मानव जन्म दुर्लभ है, उससे भी दुर्लभ पवित्र एव तीव्र बुद्धि है। नमस्कार शुभकर्म होने से उसके द्वारा बुद्धि तीक्ष्ण होती है। नमस्कार मे भक्ति की प्रधानता होने से बुद्धि विशाल एव पवित्र बनती है। नमस्कार मे सम्यक् ज्ञान होने से बुद्धि सूक्ष्म भी बनती है। इस प्रकार बुद्धि को सूक्ष्म, शुद्ध एव तीक्ष्ण बनाने को सामर्थ्य नमस्कार मे निहित है। परमपद की प्राप्ति हेतु बुद्धि के इन तीनो गुणो की आवश्यकता है। सूक्ष्मबुद्धि बिना नमस्कार के गुण जाने नही जा सकते, शुद्ध बुद्धि बिना नमस्कार के गुणो का स्मरण चित्त रूपी भूमि मे सुदृढ नही किया जा सकता।

नमस्कार-कर्ता मे निहित न्याय, नमस्कार्य तत्त्व मे निहित दया, एव नमस्कार क्रिया मे निहित सत्य, बुद्धि को सूक्ष्म, शुद्ध

एव स्थिर कर देता है। इस प्रकार बुद्धि को सूक्ष्म, शुद्ध एव स्थिर करने का सामर्थ्य नमस्कार मे निहित है।

नमस्कार मे अहकार के विरुद्ध नम्रता है, प्रमाद के विरुद्ध पुरुपार्थ एव हृदय की कठोरता के विरुद्ध कोमलता है। नमस्कार से एक ओर मलिन वासना व दूसरी ओर चित्त की चचलता दूर होने से ज्ञान का घोर आवरण अहकार टल जाता है। नमस्कार की क्रिया श्रद्धा, विश्वास एव एकाग्रता बढाती है। श्रद्धा से तीव्रता, विश्वास से सूक्ष्मता एव एकाग्रता से बुद्धि मे स्थैर्य गुण बढता है।

नमस्कार से साधक का मन परम तत्त्व मे लगता है एव बदले मे परम तत्त्व से बुद्धि प्रकाशित होती है। उस प्रकाश से बुद्धि के अनेक दोष जैसे मदता, सकुचितता, सशय-युक्तता एव मिथ्याभिमानिता आदि साथ नष्ट होते है।

नमस्कार मंत्र सिद्ध मंत्र है

नमस्कार एक मत्र है एवं मत्र का प्रभाव मन पर पडता है। मन से मानने का एव बुद्धि से जानने का काम होता है। मत्र से मन एव बुद्धि दोनो परम-तत्त्व को समर्पित हो जाते हैं। श्रद्धा का स्थान मन है एव विश्वास का स्थान बुद्धि है। ये दोनो जब प्रभु को समर्पित हो जाते हैं तब उन दोनो के दोप जल कर भस्मीभूत हो जाते है।

बुद्धि स्वार्थाधता के कारण मद, कामाधता के कारण कुबुद्धि, लोभान्धता के कारण दुर्बुद्धि, क्रोधान्धता के कारण सशयी, मानान्धता के कारण मिथ्या एव कृपणान्धता के कारण अतिशय सकुचित हो जाती है। नमस्कार रूपी विद्युत जब चित्ताकाश मे कौंधती है तब स्वार्थ से लगाकर काम, क्रोध, लोभ, मान, माया एव दर्प आदि सभी दोष दग्ध हो जाते है एव

चित्त चारों दिशाओं से निर्मल हो प्रकाशित हो उठता है। समता, क्षमा, संतोष, नम्रता, उदारता एवं निस्वार्थता आदि गुण उसमे से प्रकट होते हैं।

शब्द नमस्कार का शरीर है अर्थ नमस्कार का प्राण है एवं भाव नमस्कार की आत्मा है। नमस्कार का भाव जब चित्त को स्पर्श करता है तब मानव को सम्प्राप्त आत्मविकास का अमूल्य अवसर धन्य होता है। नमस्कार से आरम्भ हुई भक्ति अन्त मे जब समर्पण में पूर्ण होती है तब मानव स्वजन्म की सार्थकता का अनुभव करता है।

नमस्कार मंत्र सिद्ध मंत्र है। इस मंत्र का स्मरण मात्र करने से आत्मा मे जीवराशियो के ऊपर स्नेह परिणाम जाग्रत होता है। अतः स्वतंत्र अनुष्ठान या पुरश्चरणादि विधि की भी जरूरत नही पडती। उसका मुख्य कारण पंचपरमेष्ठि भगवान् का अनुग्रह-कारक सहज स्वभाव है तथा है प्रथम परमेष्ठि अरिहन्त भगवान का सिद्ध संकल्प कि "जीव मात्र का आध्यात्मिक कल्याण हो"।

अभेद में अभय एवं भेद में भय

गुण बहुमान का परिणाम अचिन्त्य शक्ति से युक्त कहा गया है। निश्चय से बहुमान का परिणाम एवं व्यवहार से बहुमान का सर्वोत्कृष्ट विषय दोनों के मिलने से कार्य-सिद्धि होती है।

गुणादि का स्मरण करने से रक्षा होती है। उससे वस्तु स्वभाव का नियम कार्य करता है। ध्याता अन्तरात्मा जब ध्येय-परमात्मा का ध्यान करतो है तब चित्त मे ध्याता-ध्येय-ध्यान इन तीनों की एकता रूपी समापत्ति होती है, जिससे क्लिष्ट कर्म का अवसान होता है एवं अन्तरात्मा को अद्भुत

शान्ति मिलती है, उसी का नाम मत्र से रक्षा है।

दूसरो के सुकृत की अनुमोदनारूपसुकृत अखडित शुभ भाव का कारण है। परम तत्त्व के प्रति समर्पण भाव एक तरफ नम्रता- दूसरी तरफ निर्भयता लाता है एव दोनो के परिणाम स्वरूप निश्चिन्तता का अनुभव होता है।

अभेद मे अभय है एव भेद मे भय है। नमस्कार के प्रथम पद मे अरिह शब्द है, वह अभेद-वाचक है एव उससे किया हुआ नमस्कार अभय-कारक है। अभयप्रद अभेदवाचक अरिह पद का पुन पुनः स्मरण त्राणकारी, अनर्थहारी तथा आत्म ज्ञान रूपी प्रकाशकारी होने से प्रत्येक विवेकी के लिए आश्रय-णीय है।

नमस्कार मंत्र महाक्रिया योग है

पचमगल रूप नमस्कार ही महाक्रियायोग है क्योकि उसमे दोनो प्रकार का तप, पाचो प्रकार का स्वाध्याय एव परमोच्च तत्त्वो का प्रणिधान निहित है। बाह्य-अभ्यतर तप ही कर्म रोग की चिकित्सा रूप बनता है, पाँचो प्रकार का स्वाध्याय महामोह रूपी विष को उतारने हेतु मत्र के समान बन जाता है एव परमेष्ठि का प्रणिधान भवभय का निवारण करने हेतु परम-शरण रूप बनता है।

नमस्कार रूपी पच-मगल की क्रिया ही अभ्यन्तर तप, भाव, स्वाध्याय एव ईश्वर प्रणिधान रूप महाक्रियायोग है। इसका स्मरण अविद्यादि क्लेशो का नाश करता है एव चित्त के अखड समाधि रूप फल को उत्पन्न करता है। क्लेश का नाश दुर्गति का क्षय करता है एव समाधिभाव सद्गति का सजन करता है।

नमस्कार मे 'नमो' पद पूजा के अर्थ मे है एव पूजा द्रव्य-

भाव संकोच अर्थ मे है। द्रव्य-संकोच हाथ, सिर, पांव आदि का नियमन एव भाव-सकोच मन का विशुद्ध व्यापार है।

दूसरे प्रकार से नमो स्तुति, स्मृति एव ध्यानपरक तथा दर्शन, स्पर्शन एव प्राप्ति कारक भी है। स्तुति द्वारा नाम ग्रहण, स्मृति द्वारा अर्थ-भावन एव ध्यान द्वारा एकाग्र चिन्तन होता है। दर्शन द्वारा साक्षात्करण, स्पर्शन द्वारा विश्रान्ति-गमन एवं प्राप्ति द्वारा स्वमवेद्य-अनुभवन भी होता है। नाम ग्रहण आदि द्वारा द्रव्यपूजा एव अर्थभावन, एकाग्र चिन्तन तथा साक्षात्करणादि द्वारा भाव पूजा होती है।

जिस प्रकार जल द्वारा दाह का शमन, तृषा का निवारण एव पक का क्षालन होता है वैसे 'नमो' पद के अर्थ की पुन पुन भावना द्वारा कषाय के दाह का शमन होता है विपय की तृषा का निवारण होता है एव कर्म का पक क्षालित हो जाता है। जैसे अन्न द्वारा क्षुधा की शान्ति, शरीर की तुष्टि एव बल की पुष्टि होती है वैसे ही 'नमो' पद द्वारा विषय-क्षुधा का शमन, आत्मा के सतोष आदि गुणों की तुष्टि तथा आत्मा के बल-वीर्य-पराक्रम आदि गुणों की पुष्टि होती है।

ऋण मुक्ति का मुख्य साधन नमस्कार

मानव जीवन का सच्चा ध्येय ऋणमुक्ति है। ऋण मुक्ति का मुख्य साधन नमस्कार है नमस्कार। विवेक ज्ञान का फल है एव विवेक ज्ञान समाहित चित्त का परिणाम है। परमेष्ठि स्मरण से चित्त समाधिवान् वनता है। परमेष्ठि भगवान् का यह सकल्प है कि सभी साधक समाहित चित्तवाले वने। अत उनका स्मरण एव नाम ग्रहण साधक के चित्त को समाधिवान् बनाता है। समाधियुक्त चित्त मे विवेक स्फुरित होता है एव विवेकी चित्त मे ऋणमुक्ति की भावना प्रकट होती है। ऋण-

मुक्ति की भावना मे से प्रकट नमस्कृति ऋणमुक्ति यानि सच्चे अर्थ मे कर्ममुक्ति को प्राप्त करवाती है।

नमस्कार मत्र द्वारा पचमगल महाश्रुतस्कध रूप श्रुत ज्ञान का आराधन होता है। उससे होती पचपरमेष्ठि की स्तुति द्वारा सम्यक् दर्शन गुण का आराधन होता है एव त्रिकरण योग से होती नमन क्रिया द्वारा आशिक चारित्रगुण का आराधन होता है।

ज्ञानगुण पाप पुण्य को समझाता है, दर्शनगुण पाप की गर्हा एव पुण्य की अनुमोदना करवाता है एव चारित्रगुण पाप का परिहार तथा धर्म का सेवन करवाता है। ज्ञान से धर्म मगल समझा जाता है, दर्शन से वह श्रद्धेय होता है एव चारित्र से धर्म मगल जीवन मे जीया जाता है। गुणो मे उपादेयता की बुद्धि ही सच्ची श्रद्धा है। उपादेयता की बुद्धि गुणो के प्रति उपेक्षा-बुद्धि का नाश करती है। गुणो के भण्डार होने से पच परमेष्ठि को किया गया नमस्कार गुणो मे उपादेयता की बुद्धि को पुष्ट करता है। पच परमेष्ठि ने पाँच विषयो को त्यागा है चार कषायो को जीता है, वे पाँच महाव्रत एव पाँच आचारो से सम्पन्न है। आठ प्रवचनमाता एव अठारह हजार शीलाग-रथ के वाहक हैं। उनको नमस्कार करने से उनमे विद्यमान सभी गुणो को नमस्कार होता है। परिणाम स्वरूप गुणो के प्रति अनुकूलता की बुद्धि एव दोषो के प्रति प्रतिकूलता की सन्मति जाग्रत होती है।

राग, द्वेष एवं मोह का क्षय

नवपदयुक्त नमस्कार से नवम पाप स्थान लोभ एव अठारहवाँ पाप स्थान मिथ्यात्वशल्य नष्ट होते है। नमस्कार सासारिक लोभ का शत्रु है क्योकि इसमे जिन्हे नमस्कार किया

जाता है वे पंच परमेष्ठि भगवान् सांसारिक सुख को तृणवत् समझ उसका त्याग करने वाले हैं एव मोक्ष सुख को प्राप्त करने हेतु परम पुरुषार्थ करने वाले हैं। नमस्कार जसे सासारिक सुख को वासना एव तृष्णा का त्याग करवाता है वैसे ही मोक्ष सुख की अभिलाषा एव उसके लिए सर्व प्रकार के प्रयत्न करना सिखाता हैं।

नमस्कार पाप में पाप-बुद्धि एव धर्म मे धर्म बुद्धि सिखाने वाला होने से मिथ्यात्वशल्य नाम के पाप स्थानक को उच्छेदित कर देता है एव शुद्ध देव, गुरु तथा धर्म के ऊपर प्रेम जाग्रत कर सम्यक्त्व रत्न को निर्मल बनाता है। नमस्कार से सांसारिक विरक्ति जागती है, जो लोभ, कषाय को नष्ट भ्रष्ट कर देती है एव नमस्कार से भगवद् बहुमान जाग्रत होता है जो मिथ्यात्वशल्य को दूर कर देता है।

राग-दोष का प्रतिकार ज्ञान-गुण के द्वारा होता है ज्ञानी पुरुष निष्पक्ष होने से स्वय मे निहित दुष्कृत्यो को देख सकता है निरन्तर उसकी निन्दा गर्हा करता है एव उससे स्वय की आत्मा को दुष्कृत्यो से उबार लेता है।

द्वेष-दोष का प्रतिकार दर्शन गुण द्वारा होता है। सम्यक् दर्शन गुण को धारण करने वाला पुण्यात्मा नमस्कार मे स्थित अरिहतादि गुणो को, सत्कर्मो को एव विश्व-व्यापी उपकारो को देख सकता है। अत. उसके विषय मे आनन्द को धारण करता है। सत्कर्मो एव गुणो की अनुमोदना तथा प्रशसा द्वारा स्वय की आत्मा को सन्मार्गाभिमुख कर सकता है।

ज्ञान-दर्शन गुण के साथ जब चारित्र गुण मिल जाता है तब मोह दोष का समूल नाश हो जाता है। मोह दूर हो जाने से पाप मे निष्पापिता एव धर्मो मे अकर्तव्यता की बुद्धि दूर हो जाती है। उसके दूर हो जाने से पाप मे प्रवर्तन एव धर्म मे प्रमाद एव

अरुचि रुक जाती है। पाप का परिवर्तन एवं धर्म का सेवन अप्रमत्तता से होता है। वह आत्मा चरित्र एव धर्म रूपी महाराजा के राज्य की विश्वासपात्र सेविका बनती है एव मोक्ष साम्राज्य के सुख का अनुभव करती है।

नवकार मे 'सम्यक् ज्ञान,' 'सम्यक् दर्शन' एव 'सम्यक्-चारित्र' इन तीनो गुणो की आराधना निहित होने से दुष्कृत गर्हा, सुकृत की अनुमोदना एव प्रभु आज्ञा का पालन प्रतिदिन बढता जाता है जिसमे मुक्ति सुख का अधिकारी बना जाता है।

निर्वेद एवं संवेग रस

नमस्कार मे निर्वेद एवं सवेग रस का पोषण होता है। निगोद आदि मे स्थित जीवो के दुख का विचार कर चित्त मे ससार के प्रति उद्वेग धारण करना ही निर्वेदरस है, एव सिद्ध गति मे स्थित सिद्ध भगवान् के सुख को देखकर आनन्द का अनुभव होना ही सवेगरस है। दुखी जीवो की दया एव सुखी जीवो के प्रमोद द्वारा तीनो दोष राग द्वेष एव मोह का निग्रह होता है।

सभी दुखी आत्माओ के दुख से भी अधिक नरक के नारकीय जीव का दुःख बढ जाता है। उससे भी अधिक दुख निगोद मे स्थित है। सभी सुखी आत्माओ के सुख से अधिक अनुत्तर के देवो का सुख चढ जाता है, उससे भी एक सिद्ध की आत्मा का सुख अनन्त गुण अधिक होता है। निगोद का एक जीव जो दुख भोग करता है, उस दुख की निगोद के अतिरिक्त सभी दुखी जीवो के एक भी मूल दुख की समता नही कर सकता है। जीव का देव एव मनुष्य के त्रिकाल सुख के अनन्त गुणाकृत अथवा वर्गकृत रूप से भी सिद्ध जीव का एक सुख बहुत अधिक होता है।

स्वय से अधिक दु खी के दु:ख को दूर करने की बुद्धि रूप दया के परिणाम से स्वय का दु:ख एव उससे उत्पन्न दीनता नष्ट होती है। स्वय से अधिक सुखी का सुख देखकर उसमें हर्ष अथवा प्रमोदभाव धारण करने से स्वय के सुख का मिथ्यागर्व अथवा दर्प गल जाता है।

दीनता अथवा दर्प, भय अथवा द्वेष, खेद अथवा उद्वेग आदि चित्त के दोषो का निवारण करने हेतु गुणाधिकृत की भक्ति एव दु खाधिकृत की दया ही सरल एव सर्वोत्तम उपाय है, उसे ही शास्त्र की परिभाषा मे सवेग, निर्वेद गिनाया गया है। नमस्कार मे दोनो प्रकार के रस पोषित होने से जीव की मानसिक अशान्ति एव असमाधि उसके स्मरण से दूर हो जाती है।

सेवन हेतु प्रथम भूमिका, अभय-अद्वेष-अखेद

नमस्कार मन्त्र की साधना से शुद्ध आत्माओ के साथ कुछ अभेद की साधना होती है। जहाँ अभेद वहाँ अभय–यह नियम है। भेद से भय एव अभेद से अभय–यह अनुभव सिद्ध है। भय ही चित्त की चचलता रूप वहिरात्मदशा रूप आत्मा का परिणाम है। अभेद के भावन से वह चचलता दोप नष्ट होता है एव अन्तरात्मदशा रूप निश्चलता गुण उत्पन्न होता है।

अभेद के भावन से अभय की तरह अद्वेप भी साधित होता है। द्वेप अरोचक भाव रूप है वह अभेद के भावन से चला जाता है। अभेद के भावन से जैसे भय एव द्वेष टल जाते हैं वैसे ही खेद भी नष्ट होता है। खेद प्रवृत्ति मे श्रान्त रूप है। जहाँ भेद वहाँ खेद एव जहाँ अभेद वहाँ अखेद अपने आप आ जाता है। नमस्कार मन्त्र के प्रभाव से जैसे अभेद बुद्धि दृढ होती जाती है वैसे ही भय, द्वेष एव खेद-दोष चले जाते हैं एव उसके स्थान पर अभय, अद्वेष एव अखेद गुण आता है।

भय, द्वेष एव खेद जो आत्मा के तात्त्विक स्वरूप के अज्ञान से उत्पन्न होते थे, उस आत्मा के शुद्ध एव तात्त्विक स्वरूप का सम्यक् ज्ञान होने के साथ दूर हो जाते हैं। नमस्कार मन्त्र मे स्थित पाँचो परमेष्ठि शुद्ध स्वरूप को प्राप्त होने से उनको किया जाने वाला नमस्कार जब चित्त मे परिणमित होता है तब आत्मा में सबके साथ आत्मीयता से तुल्यता का ज्ञान तथा स्वरूप से शुद्धता का ज्ञान आविर्भूत होता है एव वह आविर्भाव होने के साथ ही भय, द्वेष एव खेद चले जाते है।

नमस्कार मन्त्र वैराग्य एव अभ्यास स्वरूप भी है। वैराग्य निर्भ्रान्त ज्ञान का फल है एव अभ्यास चित्त की प्रशान्तवाहिता का नाम है। चित्त जब प्रशमभाव को प्राप्त करता है तब वह विश्वमैत्रीमय वनता है, जब चित्त मे वैरविरोध का एक अश भी नही रहता तब अभ्यास का फल गिना जाता है। वैराग्य ज्ञान रूप है एव अभ्यास प्रयत्न रूप है। ज्ञान की पराकाष्ठा ही वैराग्य एव समता की पराकाष्ठा ही अभ्यास कहलाता है। ज्ञान एव समता जब पराकाष्ठा तक पहुँचती है तब मोक्ष सुलभ वनता है।

नमस्कार मन्त्र दोष की प्रतिपक्ष भावना

श्री नमस्कार मन्त्र दोष की प्रतिपक्ष भावना स्वरूप भी है। योगशास्त्र मे कहा गया है कि—

यो य स्याद् वाधको दोषस्तस्य तस्य प्रतिक्रियाम्।
चिन्तयेद् दोषमुक्तेषु, प्रमोद यतिषु व्रजन्॥

योगशास्त्र, प्र० ३ श्लोक॥ ३६

स्वोपज्ञ टीकाकार महर्षि इस श्लोक के विवरण में कहते हैं कि—

सुकरं हि दोषमुक्त-मुनिदर्शनेन प्रमोदादात्मन्यपि दोषमोक्षणम्।

जो दोष स्वयं को वाधक प्रतिभासित होता है उस दोष को दूर करने का उपाय उस दोप से मुक्त हुए मुनियो के गुणो के विपय में प्रमोद भाव धारण करना है।

दोप-मुक्त यतियो के गुणो के विषय में प्रमोद भाव को धारण करने वाला जीव उन दोषो से स्वयमेव मुक्त वन जाता है। नव परमेष्ठि नमस्कार मन्त्र का स्मरण परमेष्ठि पद में विराजमान महामुनियो के गुणो के विषय में वहुमान भाव उत्पन्न करता है जिससे स्मरण करने वाले के अन्त.करण मे स्थित समस्त दोष स्वयमेव उपशान्ति को प्राप्त होते हैं।

काम दोष का प्रतिकार स्थूलिभद्र मुनि का ध्यान है, क्रोध दोष का प्रतिकार गजसुकुमाल मुनि का ध्यान है, लोभ दोष का प्रतिकार शालिभद्र एव धन्य कुमार मे स्थित तप, सत्य, सन्तोप आदि गुणो का ध्यान है। इस प्रकार मान को जीतने वाले बाहुवलि एव इन्द्रभूति, मोह को जीतन वाले जम्बूस्वामी एव वज्रकुमार, मद, मान एव तृष्णा को जीतने वाले मल्लिनाथ, नेमिनाथ एव भरत चक्रवर्ती आदि महान् आत्माओ का ध्यान उन-उन दोपो को जीतने वाला होता है।

श्री नमस्कार मन्त्र मे मद, मान, माया, लोभ, क्रोध, काम एव मोह आदि दोपो पर विजय प्राप्त करने वाले समस्त महापुरुषो का ध्यान होने से ध्याता के वे सभी दोष समूल विनष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार नमस्कार मन्त्र दोपो की प्रतिपक्ष भावना रूप वन गुणकारी होता है।

इमी अर्थ को वताने वाला नीचे का एक श्लोक एवं उसकी भावना नमस्कार की ही अर्थ-भावना स्वरूप वन जाती है—

धन्यास्ते वंदनीयास्ते, तैस्त्रैलोक्यं पवित्रितम्।
यैरेप भुवनक्लेशी काम-मल्लो विनिर्जितः॥

धर्मविन्दु टीका

वे पुरुष धन्य हैं, वन्दनीय हैं एव उन पुरुषो ने तीनो लोकों को पवित्र किया है जिन्होने काम रूपी मल्ल को जीत लिया है।

यही क्रोधरूपी मल्ल, लोभरूपी मल्ल, मोहरूपी मल्ल, मानरूपी मल्ल एव दूसरे भी कठोर दोषरूपी मल्ल जिन्होने जीत लिए हैं वे पुरुष भी धन्य, वद्य एव त्रैलोक्य पूज्य हैं, ऐसी भावना की जा सकती है। ये सभी भावनाएँ श्री नमस्कार मन्त्र के स्मरण के समय हो सकती हैं।

इष्ट का प्रसाद एवं पूर्णता की प्राप्ति

मन्त्र जप में नित्य नया अर्थ होता है, शब्द वे के वे ही रहते है एव अर्थ नित्य नूतन प्राप्त होता है। अन्न वही होता है पर भूख के प्रमाण मे हमे नित्य नया स्वाद अनुभव होता है। यही बात तृषातुर को जल मे एव प्राण धारण करने वाले जीव को पवन मे अनुभव होती हैं।

तृषा तथा क्षुधा की शान्ति एव प्राणो को टिकाने की शक्ति जब तक जल, अन्न एव पवन मे स्थित है तब तक उनकी उपयोगिता एव नित्य नवीनता मानवी मन मे टिकी रहती है। नमो मन्त्र का जाप भी आत्मा की क्षुधा तथा तृष्णा को शान्त करने वाला है एव आत्मा के बल-वीर्य को बढाने वाला है। इसी से उसकी उपयोगिता एव नित्य नूतनता स्वयमव अनुभव होती है।

नमस्कार मन्त्र का जाप एक तरफ इष्ट का स्मरण, चिन्तन एव भावन करवाता है एव दूसरी ओर नित्य नूतन अर्थ की भावना जाग्रत करता है अत उस मन्त्र को मात्र अन्न, जल एव पवन के तुल्य ही नही किन्तु पारसमणि, चिन्तामणि, कल्पवृक्ष एव काम कुम्भ से भी ज्यादा मूल्यवान् माना है।

मनुष्य के मन में नरक को स्वर्ग एव स्वर्ग को नरक बनाने का सामर्थ्य है। उत्तम मन्त्र द्वारा वह नरक को स्वर्ग बना सकता है। श्रद्धा एव विश्वासपूर्वक उत्तम मन्त्र का जाप करने वाले सदा सुरक्षित हैं। नाम एव नमस्कार मन्त्र द्वारा इष्ट का का प्रसाद एव पूर्ण की प्राप्ति होती है। इष्ट का नाम सभी विपदाओं में से जीव को पार उतारने वाला सर्वोत्तम साधन है। इष्ट का नमस्कार सभी पापवृत्ति एव पापप्रवृत्ति का समूल विनाश करता है।

इष्ट तत्त्व की अचिन्त्य शक्ति

धर्म मात्र का ध्येय आत्म ज्ञान है। मन्त्र के ध्यान मात्र से वह सिद्ध होता है। मन्त्र का रटन एक ओर हृदय का मिलन, ईर्ष्यासूयादि को साफ करवाने का कार्य करता है, दूसरी ओर तन, मन, धन की आधि-व्याधि एव उपाधियो को टाल देता है।

शरीर की व्याधि असाध्य हो एव कभी न टले तो भी मन की शान्ति एव बाह्य व्याधि मात्र को समता से सहन करने की शक्ति तो वह देता ही है। वह यह कार्य कैसे सम्पादित करता है यह प्रश्न यहाँ उचित नहीं है। कितने ही प्रश्न एव उनके उत्तर बुद्धि से या बुद्धि को दे दिए जाय ऐसे होते नहीं। हृदय की बात हृदय ही जान सकता है। श्रद्धा की बात श्रद्धालु ही समझ सकता है। परमात्म तत्त्व एव उसकी शक्ति को न मानने वाले के लिए मन याने स्वय का अह ही परमात्मा का स्थान लेता है। सर्व समर्थ की शरण लिए बिना अह कभी टलता नहीं एव जहाँ तक अह नहीं टलता शान्ति का अनुभव आकाशकुसुमवत् होता है।

पू० उपाध्याय यशोविजयजी महाराज श्री ने अध्यात्मसार ग्रन्थ के अनुभवाधिकार मे कहा है कि—

शान्ते मनसि ज्योतिः प्रकाशते शान्तमात्मनः सहजम् ।
भस्मीभवत्यविद्या, मोहध्वान्तं विलयमेति ।

मन जब शान्त होता है तब शान्त चित्त में आत्मा का सहज शुद्ध स्वभाव प्रकाशित होता है, उस समय अनादि-कालीन अविद्या, मिथ्यात्वमोहरूप अन्धकार विनष्ट होता है ।

परमात्मा एव उसके नाम का लाभ सभी को नही पर सदाचारी, श्रद्धावान् एव भक्तहृदय को ही शीघ्र मिलता है । परमात्मा की अचिन्त्य शक्ति पर मनुष्य को जब पूर्ण श्रद्धा हो जाती है, तब उसकी सातो धातुओ का रूपान्तर होता है । अत- परमात्मा का नाम ही भक्त के लिए ब्रह्मचर्य की दसवीं सुरक्षा पक्ति है । नौ सुरक्षा पक्तियो से भी इसका सामर्थ्य अपेक्षाकृत अधिक है ।

मंत्रयोग की सिद्धि

मन्त्र शब्दो का समूह है जिनका कोई अर्थ निकलता हो । इन शब्दो के अर्थ का साकार होना ही मन्त्र का सिद्ध होना गिना जाता हे । शब्द से वायु पर आघात होता है । जब कोई शब्द बोला जाता है तब अनन्त वायु रूपी महा सागर मे तरगे पैदा होती है । तरगो से गति, गति से ऊष्मा एव ऊष्मा से स्वास्थ्य सुधरता है । प्राणायाम का भी यही उद्देश्य है एव वह उद्देश्य मन्त्र जाप से सिद्ध होता है । मन्त्र का जाप हृदय मे से दूषित भावनाओ को बाहर निकाल अन्त करण को शुद्ध करता है । मन्त्रजाप से ऊष्मा बढने से मस्तिष्क की गुप्त समृद्धि का कोष खुल जाता है एव इसके द्वारा मनोरथ पूरा होता है ।

शब्द-रचना की शक्ति अत्यन्त प्रबल होती है । जो काम वर्षों मे नही हो सकता, वह कार्य योग्य शब्द रचना द्वारा थोडे ही क्षणो मे सम्पन्न हो सकता है । नमस्कार मन्त्र इस कारण

महान् मन्त्र गिना जाता है एव महान् से महान् असाध्य दुस्साध्य कार्य भी इससे सिद्ध होते देखे जाते हैं।

उत्साहान्निश्चयात् धैर्यात्, संतोषात्तत्त्वदर्शनात्।
मुनेर्जनपदत्यागात्, षड्भिर्योगः प्रसिध्यति ॥

दूसरे योगो की भाँति मन्त्र योग की सिद्धि भी उत्साह से, निश्चय से, धैर्य से, सन्तोष से, तत्त्वदर्शन से एव लोक सम्पर्क के त्याग से हो सकती है।

अमूर्त एवं मूर्त के मध्य का सेतु

'नमो' धर्मवृक्ष का मूल है, धर्मनगर का द्वार है, धर्म-प्रासाद का स्तम्भ है, धर्मरत्न का स्थान है, धर्म-जगत का आधार है एव है धर्मरस का पात्र। नमस्कार रूपी मूल बिना धर्मवृक्ष सूख जाता है, नमस्काररूपी द्वार बिना धर्मनगर मे प्रवेश अशक्य है। नमस्काररूपी स्तम्भ के विना धर्म-प्रासाद टिक नही सकता है, नमस्काररूपी धारक बिना धर्मरत्नो का रक्षण होता नही, नमस्काररूपी आधार विना धर्मजगत निराधार है। नमस्काररूपी पात्र विना धर्मरस टिक नही सकता एव धर्मरस का स्वाद चखा नही जा सकता।

'विनय-मूलो धम्मो'—धर्म का मूल विनय है। नमस्कार विनय का ही एक प्रकार है। गुणानुराग धर्मद्वार है एव नमस्कार गुणानुराग की क्रिया है। श्रद्धा धर्ममहल का स्तम्भ है, नमस्कार इसी श्रद्धा एव रुचि का दूसरा नाम है। मूलगुण एव उत्तरगुण रत्न है, नमस्कार उनका मूल्याकन है। चतुर्विध सघ एव मार्गानुसारी जीव ही धर्मरूपी जगत है, उसका आधार नमस्कार भाव है। समता भाव, वैराग्य भाव एव उपशम भाव धर्म का रस है एव नमस्कार ही उस रसास्वादन का पात्र अथवा आधार है।

विनय, भक्ति, श्रद्धा, रुचि, आर्द्रता, निरभिमानता आदि नमस्कार भाव के ही विभिन्न पर्यायवाची शब्द है। अत नमस्कार भाव ही धर्म का मूल, द्वार, पीठ, निधान, आधार एव पात्र है। अमूर्त एव मूर्त के मध्य एक मात्र पुल, सेतु अथवा सधि नमस्कार ही है।

नमस्कार में सर्व संग्रह

नवकार मे चौदह नकार है। (प्राकृत भाषा मे 'न' एव 'ण' दोनो विकल्प से आते हैं) ये नकार चौदहपूर्वों को बताते है एव यह नवकार चौदहपूर्वरूपी श्रुतज्ञान का सार है ऐसी प्रतीति करवाते है। नमस्कार मे बारह अकार है, वे बारह अङ्गो को बताते है। नमस्कार मे नौ णकार है। वे नवनिधियो को बताते है।

नमस्कार के पाँच नकार पचज्ञान को, आठ सकार अष्ट सिद्धियो को, नवमकार चार मगल एव महाव्रतो को, तीन सकार तीनलोक को, तीन हकार आदि मध्य एव अन्त्य मगल को, दो चकार देश-चारित्र एव सर्व-चारित्र को दो ककार दो प्रकार के घाती अघाती कर्मों को, पाँच पकार पाँच परमेष्ठि को तीन रकार ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूपी तीन रत्नो को, तीन मकार तीन योगो एव उनके विग्रह को, दो गकार गुरु एव परम-गुरु याने दो गुरुओ को, दो एकार सप्तम स्वर होने से सात राज ऊर्ध्व एव सात राज अधो अर्थात् चौदह राजलोक को सूचित करते हैं।

मूल मन्त्र के चौवीस गुरु अक्षर चौवीस तीर्थंकरो रूपी परम गुरुओ एव ग्यारह लघु अक्षर वर्तमान तीर्थपति के ग्यारह गण-धर भगवान् रूपी गुरुओ को भी बताने वाले है।

प्राणशक्ति एवं मनस्तत्त्व

नमस्कार रूपी क्रिया द्वारा श्वास का मनस्तत्त्व मे रूपान्तर हो जाता है। ज्यो-ज्यो नमस्कार के जाप की सख्या वढती जाती है त्यो-त्यो आध्यात्मिक उन्नति होने के साथ साधक श्वास प्रश्वास को मन की ही क्रिया के रूप मे जान सकता है। उससे मन के सकल्प विकल्प शमित हो जाते है।

प्राण शक्ति द्वारा मन को सहज ही सयम मे लेती क्रिया प्रणाली अनन्त को पहुँचने का सरल से सरल, अत्यन्त ही प्रभावी एव सम्पूर्ण प्रकार से वैज्ञानिक मार्ग है। नमस्कार की क्रिया एवं जाप द्वारा इस मार्ग की सरल रूप से सिद्धि होती जाती है। अत जाप द्वारा होती नमस्कार की क्रिया का मार्ग अनन्त परमातमस्वरूप को प्राप्त करने का द्रुत, सुनिश्चित एव अनेक महापुरुषो द्वारा अनुभव से प्रकाशित राजमार्ग है। तुलसीदासजी का भी कथन है कि–

नामु सप्रेम जपत अनयासा, भगत होहिं मुद मंगल वासा।
राम एक तापस तिय तारी, नाम कोटि खल कुमति सुधारी।
सहित दोष दुख दास दुरासा, दलइ नाम जिमि रवि निसि नासा।
भाय कुभाय अनख आलसहूँ, नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।

मन्त्र के शब्दो मे होता प्राण का विनियोग (प्रवृत्ति निवृत्ति दो व्यापार) कोई एक अर्थ मे ही समाप्त नही होता शास्त्र निर्दिष्ट सभी अर्थों मे व्याप्त हो जाता है। मन्त्र जाप द्वारा शरीर, प्राण (यहाँ प्राण श्वासोच्छ्वास शब्द के लिए सकेतित है।) इन्द्रियाँ, मन, वुद्धि एव प्रज्ञा पर्यन्त सभी करण शुद्धि को अनुभव करते हैं एव जीवात्मा को आध्यात्मिक आनन्द की अनुभूति पर्यन्त ले जाते है। मन्त्र के शब्दो के द्वारा मन-वुद्धि आदि का प्राण तत्त्व मे रूपान्तर होता है एवं प्राण तत्त्व सीधी

आत्मानुभूति करवाता है (मन त्रायते—मन को रक्षित करता है मनस त्रायते—प्राण की मन से रक्षा।) प्राण-तत्त्व आत्मा के वीर्य गुण के साथ निकट का सम्बन्ध स्थापित करता है।

शब्द के दो अर्थ होते हैं, एक वाच्यार्थ एव दूसरा लक्ष्यार्थ। वाच्यार्थ का सम्बन्ध शब्द कोष के साथ है। लक्ष्यार्थ का सम्बन्ध साक्षात् जीवन के साथ है। पच मगल का लक्ष्यार्थ प्राणतत्त्व की शुद्धि द्वारा साक्षात् जीवनशुद्धि करवाने वाला होता है।

कर्म का निरनुबन्ध क्षय

जब चित्त मे अरति, उद्वेग एव परिश्रान्ति का भास हो तब जानना चाहिए कि मोहनीय कर्म का उदय एव उसके साथ अशुभ कर्म का विपाक जाग्रत हो गया है। उसे टालने का उपाय पच मगल है ऐसा शास्त्रकारो ने कहा है। पच मगल का शान्त चित्त से एकाग्रतापूर्वक जाप करने से अशुभ कर्म-विचालित हो शुभ कर्म मे परिवर्तित हो जाते हैं। उसका यह अर्थ है कि उदित कर्म अवश्य भोगना पड़ता है, उसे ज्ञानी ज्ञान से, समता से एव अज्ञानी अज्ञान से, आर्त रौद्र ध्यान से भोगते हैं। ज्ञानी को नवीन कर्म बन्ध नही होता पर अज्ञानी को होता है।

सत्ता मे से अर्थात् सचित मे से उदय मे आते हुए कर्म मे वर्तमान के शुभाशुभ भाव से अन्तर पड सकता है। पच मगल के जाप एव स्मरण मे ज्ञानी के ज्ञान गुण से, साधु के संयम गुण से, तपस्वियो के तप गुण से अनुमोदना होती है एव उन-उन गुणो का मानसिक आसेवन होता है। उनसे जो शुभ भाव जागता है, उससे अशुभ कर्म की स्थिति एव रस घट जाता है एव शुभ रस बढ जाता है। उदयागत कर्म समताभाव से अनुभव होने से उसका निरनुबन्धक्षय हो जाता है।

पच मंगल से भाव धर्म का आराधन होता है क्योंकि उस रत्नत्रयधरो के विषय मे भक्ति प्रकट होती है, उनकी आज्ञा पालन करने का उत्साह जागता है, एक सबके शुभ की ही चिन्ता का भाव प्रकट होता है एव अशुभ ससार के प्रति निर्वेद की भावना जन्म लेती है। कहा है कि—

रत्नत्रयधरे एका, भक्तिस्तत्कार्यकर्म च ।
शुभैकचिन्ता संसारे जुगुप्सा चेति भावना ॥

यह भाव धर्म, दान, शील, तप आदि द्रव्य धर्म की वृद्धि करता है एव यह द्रव्य धर्म की वृद्धि फिर भाव धर्म की वृद्धि करती है। इस प्रकार उत्तरोत्तर द्रव्य-भाव धर्म की वृद्धि अपनी पराकाष्ठा को प्राप्त कर सर्व कर्म रहित मोक्ष का कारण बनती है।

नवकार मन्त्र के पदो मे गुण एव गुणी की उपासना के उपरान्त शब्द द्वारा शुभ स्पन्दन उत्पन्न करने की जबरदस्त शक्ति है। अत उसे सर्व मङ्गलो मे प्रथम मगल एव सर्व कल्याणो मे उत्कृष्ट कल्याण कहा गया है।

चार निक्षेपो से होती पाँचो परमेष्ठियो की भक्ति नवकार मन्त्र मे निहित होने से सर्व प्रकार के शुभ, शिव एव भद्र तथा पवित्र, निर्मल एव प्रशस्त भाव पैदा करने का सामर्थ्य उसमे निहित है।

अनिर्णीत वस्तु का नामादि द्वारा निर्णय, शब्द द्वारा अर्थ का एवं अर्थ द्वारा शब्द का निश्चित बोध, अनभिमत अर्थ का त्याग तथा अभिमत अर्थ का स्वीकार करवाने मे जो उपयोगी होता है वह निक्षेप कहलाता है।

नवकार मन्त्र के पद नाम, स्थापना, द्रव्य एव भाव इन चार निक्षेपो के साथ सम्बन्धित होने से समग्र विश्व की शुभ वस्तुओ के साथ सम्बन्ध स्थापित करवाते है। इनके द्वारा

अशुभ कर्म का क्षय एव शुभ कर्म का वन्ध करवाकर परम्परानुसार मुक्ति-सुख को प्राप्त करवाता है। अत. यह नवकार मन्त्र सर्व शुभो मे उत्कृष्ट शुभ, सर्व मगलो मे उत्कृष्ट मगल भी कहलाता है।

मोक्ष मार्ग में पुष्टावलम्बन

नवकार मन्त्र जीव को स्वय की उन्नति सधवाने हेतु पुष्टावलम्बन है। अलक्ष्य को साधने हेतु लक्ष्य का अवलम्बन लेना ही सालम्बन ध्यान है। आलम्बन द्वारा ध्येय मे उपयोग की एकता होती है।

उपयोग का अर्थ है बोध रूप व्यापार एव एकता अर्थात् सजातीय ज्ञान की धारा। निमित्त कारण दो प्रकार के हैं—एक पुष्ट एव दूसरे अपुष्ट। पुष्ट निमित्त अर्थात् जो कार्य सिद्ध करना हो वह कार्य अथवा साध्य जिसमे विद्यमान हो। मोक्ष मार्ग मे सिद्धत्व साध्य है जो श्री अरिहत सिद्धादि परमेष्ठियो मे है। अत उनका निमित्त पुष्ट निमित्त है, उनका आलम्बन पुष्ट आलम्बन है।

पानी मे सुगन्ध रूप कार्य उत्पन्न करना हो तो पुष्प पुष्ट-निमित्त हैं क्योंकि फूलों मे सुगन्ध निहित है। पुष्ट निमित्तो का आलम्वन स्मरण, विचिन्तन एव ध्यान द्वारा हो सकता है। पुष्ट निमित्तो के स्मरण को शास्त्रो मे मोक्षमार्ग का प्राण कहा गया है। सर्व सिद्धियो को प्रदान करवाने मे स्मरण अचिन्त्य चिन्तामणि के समान गिना जाता है। निमित्तो का स्मृति रूपी चिन्तामणि रत्न प्रशस्त ध्यानादि भावो को प्राप्त करवाकर शुभ फलो को अभिव्यक्त करता है। पुष्ट निमित्तो के स्मरण से इन्द्रियो का वाह्य विषयों से प्रत्याहार होता है। इस प्रकार चित्त से विशेष प्रकार से स्थिरतापूर्वक चिन्तन ही विचिन्तन है। चित्त का विजातीय वृत्ति से अस्पृष्ट सजातीय वृत्ति का

एक समान प्रवाह ध्यान है। उसे प्रत्यय की एकतानता भी कहते हैं।

स्मरण, विचिंतन एव ध्यान साधना का जीवित, प्राण एव वीर्य है। पुष्ट निमित्तो के आलम्बन से वह प्राप्य है। अत. पुष्ट निमित्त साधना के प्राण गिने जाते हैं। सिद्धसेन सूरिजी कहते है कि—

पुष्टहेतुर्जिनेन्द्रोऽयम्, मोक्ष-सद्भाव-साधने।

मोक्ष रूपी कार्य की सिद्धि हेतु श्री जिनेन्द्र भगवान् एव उपलक्षण से पाँचो परमेष्ठि-पुष्ट निमित्त है। अत श्री नमस्कार मन्त्र सभी साधनो के लिए पुष्ट आलम्बन रूप बन साध्य की सिद्धि करवाता है।

देह का द्रव्य स्वास्थ्य एवं आत्मा का भाव स्वास्थ्य

पच मगल महाश्रुतस्कन्ध रूप होने से सम्यक् ज्ञान स्वरूप है, पच-परमेष्ठि की स्तुति रूप होने से सम्यक् दर्शन स्वरूप है, तथा सामायिक की क्रिया की अगरूप एव मन, वचन, काया की प्रशस्त क्रिया रूप होने से कथचित् चारित्र स्वरूप भी है।

ज्ञान में मन की, स्तुति मे वचन की एव क्रिया में काया की प्रधानता निहित है।

आयुर्वेदानुसार वात, पित्त एव कफ की विषमता ही रोग एव समानता आरोग्य है। जहाँ मन वहाँ प्राण एवं जहाँ प्राण वहाँ मन, इस न्याय के अनुसार सम्यक् ज्ञान वात-वैषम्य को शमित करता है। जहाँ दर्शन, स्तवन, भक्ति आदि हो वहाँ मधुर परिणाम होते है एव वह पित्त प्रकोप को शमित करते है। जहाँ काया की सम्यक् क्रिया हो वहाँ गति है, जहाँ गति

वहाँ उष्णता होती ही है। उष्णता कफ के प्रकोप को शान्त करती है। इस प्रकार श्री पचमगल मे शरीर के अस्वास्थ्य उत्पन्न करने वाले त्रिदोष को शान्त करने की शक्ति है।

दूसरी प्रकार से विचारने से यह ज्ञात होता है कि राग ज्ञान गुण का घातक है, द्वेष दर्शन गुण का घातक है एव मोह चारित्र गुण का घातक है। इमसे विपरीत पचमगल मे ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है तथा मन की, वचन की, काया की प्रशस्त क्रिया है। अत पचमगल मे देह को दूषित करने वाले वात, पित्त एव कफ दोष को शमित करने की शक्ति है, वैसे ही आत्मा को दूषित करने वाले राग, द्वेष एव मोह को भी शमित करने की शक्ति है।

वात रोग से व्यक्ति वातुल हो जाता है, पर ज्ञान के आने पर वाचाल भी मौन हो जाता है। विकृत ज्ञान राग है, विकृत श्रद्धा दोष है एव विकृत वर्तन मोह है। रागी दोष को नही देखता, द्वेषी गुण को नही देखता एव मोही जानता हुआ भी विपरीत वर्तन करता है। गुण एव दोष का यथार्थ ज्ञान करने हेतु राग एव द्वेष को तथा यथार्थ वर्तन करने हेतु मोह को जीतना चाहिए जहाँ आचरण मे दोष होगा वहाँ ज्ञान दूषित होगा ही, यह नियम नही है। ज्ञान यथार्थ होते हुए भी आचरण के दूषित होने मे कारण प्रमादशीलता, दुस्सग एवं अनादि असदभ्यास हैं। इस कारण रागादि दोषो का निग्रह करने हेतु यथार्थ ज्ञान एव दूसरी तरफ यथार्थ आचरण का अभ्यास आवश्यक है।

ज्ञान मन मे, स्तुति-स्तवन वचन मे एव प्रवृत्ति काया द्वारा निष्पन्न होती है। कफ दोष, काया की, पित्त दोष वचन की एव वात दोष मन की क्रिया के साथ सम्बन्ध रखता है।

राग, द्वेप एव मोह ये तीनो दोप भी क्रमश मन, वचन व काया की क्रिया के साथ सम्बन्ध रखते हैं। राग की अभिव्यक्ति मुख्य रूप से मन मे, द्वेष की वचन मे एव मोह की क्रिया द्वारा होती है। पचमगल ज्ञान, दर्शन, चारित्र स्वरूप होने से तथा उसमे मन, वचन तथा काया तीनों की प्रशस्त क्रिया होने से उसमे आत्मा को दूषित करने वाले राग, द्वेष व मोह तथा शरीर को दूषित करने वाले वात, पित्त तथा कफ का निग्रह करने की शक्ति निहित है। अत श्री पचमगल का आराधन आत्मा का भाव-स्वास्थ्य व देह का द्रव्य-स्वास्थ्य दोनो को प्रदान करने की शक्ति एक ही साथ रखता है।

प्रथम पद का अर्थभावनापूर्वक जाप

समग्र नवकार की भाँति नवकार के प्रथम पद के जाप से मन-वचन-काया के योग तथा आत्मा के ज्ञान-दर्शन-चारित्र गुणो की शुद्धि होती है।

देह की तीनो धातु वात, पित्त एव कफ तथा आत्मा के तीन दोप राग-द्वेप व मोह क्रमश तीनो योग की तथा गुण की शुद्धि द्वारा दूर होते है।

'नमो' पद द्वारा मनोयोग तथा ज्ञान-गुण की, 'अरिह' पद द्वारा वचनयोग व दर्शन गुण की तथा 'ताण' पद द्वारा काययोग तथा चारित्र गुण की शुद्धि होती है। त्रियोग की शुद्धि द्वारा वात, पित्त व कफ के विकार तथा त्रिगुण की शुद्धि द्वारा राग, द्वेप एवं मोह के दोप नष्ट होते है। अत श्री नवकार मन्त्र के प्रथम पद के जाप द्वारा शरीर तथा आत्मा दोनो की भी शुद्धि होती है। शुभ मनोयोग से वातविकार जाता है, शुभ वचनयोग मे पित्तविकार जाता है व शुभ काययोग मे कफविकार जाता है। सम्यक् ज्ञान द्वारा राग-

दोप जाते हैं, सम्यक् दर्शन द्वारा द्वेष दोष जाता है व सम्यक् चरित्र द्वारा मोह दोष जाता है। मन की शुद्धि मुख्य रूप से 'नमो' पद व उसके अर्थ की भावना द्वारा होती है। वचन की शुद्धि 'अरिह' पद एव उसके अर्थ की भावना द्वारा होती है। काया की शुद्धि 'ताण' पद तथा उसके अर्थ की भावना द्वारा होती है।

'नमो' पद मगलसूचक है। 'अरिह' पद उत्तमता का सूचक है एवं 'ताण' पद शरणागति को सूचित करता है। मंगल, उत्तम एव शरण को बताने वाले प्रथम पद की भावना क्रमश. ज्ञान, दर्शन एव चारित्र की शुद्धि करती है।

सच्चा ज्ञान दुष्कृतवान स्वात्मा की गर्हा करवाता है, सच्चा दर्शन सुकृतवान अरिहतादि की स्तुति करवाता है तथा सच्चा चारित्र आज्ञा पालन के भाव का विकास करता है। दुष्कृत के प्रति राग, सुकृत के प्रति द्वेष तथा आज्ञा पालन के प्रति प्रमाद सम्यक् ज्ञान, दर्शन व चारित्र गुण के विकास से नष्ट होते है तथा इन तीनो गुणो का विकास प्रथम पद के अर्थभावनापूर्वक होते जाप द्वारा सुसाध्य बनता है।

नवकार चौदह पूर्व-अष्ट-प्रवचन माता

महामन्त्र का मुख्य विषय योगशास्त्र मे वर्णित लक्षणो वाली मनोगुप्ति है। वहाँ कहा गया है कि —

विमुक्तकल्पनाजालं, समत्वे सुप्रतिष्ठितम् ।
आत्मारामं मनस्तज्ज्ञैर्मनोगुप्तिरुदाहृता ॥

आर्त रौद्र ध्यान का त्याग, धर्म ध्यान मे स्थिरता एव आत्माराम वाला शुक्लध्यान जिसमे हो उसे ज्ञानी पुरुषो ने मनोगुप्ति कहा है। नवकार मन्त्र के जाप से तीनो कार्य

अल्पाधिक अश मे सिद्ध होते दिखाई देते है। अत मनोगुप्ति की भाँति नवकार को भी चौदह पूर्व का सार कहा है।

चौदह पूर्व का सार जिस प्रकार नवकार है, वैसे ही अष्ट प्रवचन माता भी है। अष्टप्रवचन माता मे भी मनोगुप्ति प्रधान है। शेप गुप्तियाँ तथा समितियाँ मनोगुप्ति को सिद्ध करने के लिए ही कही गई है। दूसरी प्रकार से चौदह पूर्व का अभ्यास कर के भी अन्त मे अष्टप्रवचन माता के परिपूर्ण पालन स्वरूप पचपरमेष्ठि पद को ही प्राप्त करना है।

महामन्त्र का जाप व चिन्तन पाँच परमेष्ठियो पर प्रीति व भक्ति जाग्रत करता है तथा इस स्वरूप को प्राप्त करने की तत्परता (तमन्ना) उत्पन्न करता है व अन्त मे उस स्वरूप को प्राप्त करवाकर विरमित होता है। अत नवकार, चौदह पूर्व एव अष्टप्रवचन माता एक ही कार्य को सिद्ध करने वाला मन्त्र होने से समानार्थक एक प्रयोजनात्मक एव परस्पर पूरक बन जाता है।

तत्त्वरुचि-तत्त्वबोध-तत्त्वपरिणति

नवकार के प्रथम पद की अर्थभावना अनेक प्रकार से विचारी जा सकती है। नमोपद से तत्त्वरुचि, अरिह पद से तत्त्वबोध तथा ताण पद से तत्त्वपरिणति ली जा सकती है। नमोपद आत्मतत्त्व की रुचि जाग्रत करता है, अरिह पद शुद्ध आत्मतत्त्व को बोध कराता है एव ताण पद आत्मतत्त्व की परिणति उत्पन्न करता है।

श्री विमलनाथ प्रभु के स्तवन मे पू० उपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज कहते है कि—

तत्त्व प्रीतिकर पाणी पाए विमला लोके आंजीजी,
लोयण गुरु परमान्न दिए तब भ्रमनां खेस विभांजी जी।

परमात्मा का ध्यानतत्त्व प्रीतिकर जल है तत्त्वबोधकर निर्मल नेत्राञ्जन है एव सर्वरोगहर परमान्न भोजन है। नवकार के प्रथम पद मे होता अरिहत परमात्मा का ध्यान इन तीनो कार्यो को करता है 'नमो' पद से मिथ्यात्व का त्याग। 'अरिह' पद से अज्ञान का त्याग एव 'ताण' पद से अविरति का त्याग होता है। नमनीय को न नमना ही मिथ्यात्व है। आत्मा के शुद्ध स्वरूप को न जानना ही अज्ञान है तथा आचरण करने योग्य का आचरण न करना ही अविरति है। नवकार के प्रथम पद के आराधन से नमनीय को नमन, ज्ञातव्य का ज्ञान व करणीय का सम्पादन होने से तीनो दोपो का निवारण हो जाता है।

बहिरात्मभाव-अन्तरात्मभाव-परमात्मभाव

नवकार के प्रथम पद से वहिरात्मभाव का त्याग, अन्तरात्मभाव का स्वीकार तथा परमात्मभाव का आदर होता है। श्री आनन्दघनजी महाराज सुमतिनाथ भगवान के स्तवन मे कहते है कि —

वहिरात्म तजी अन्तर आतमारूप
थई थिर भाव सुज्ञानी,
परमातमनु हो आतम भाव वुं,
आतम अरपण दाव, सुज्ञानी,
सुमतिचरणकंज आतम अरपणा—

सुमतिनाथ भगवान के चरणकमल मे आत्मा का अर्पण करने का दाव यह है कि वहिरात्म भाव का त्याग कर, अन्तरात्म भाव मे स्थिर हो, स्वात्मा ही तत्त्व से परमात्म है इस भाव मे रमण करना। नमोपद द्वारा वहिरात्म भाव का त्याग व अन्तरात्म भाव का स्वीकार होता है तथा अरिह एव

तारणं पद द्वारा आत्मा का परमात्म स्वरूप मे भावन व उसके परिणामस्वरूप रक्षण होता है। तीनो भावो का पृथक्-पृथक् वर्णन करते हुए आप श्री कहते है —

आतम बुद्धि हो कायादिक ग्रह्यो,
बहिरातम अघरूप सुज्ञानी,
कायादिकनो हो साखीधर रह्यो,
अन्तर आतम रूप सुज्ञानी, सुमति चरण ॥
ज्ञानानन्दे हो पूरण पावनो,
वरजित सकल उपाधि, सुज्ञानी,
अतीन्द्रिय गुणगण मणि आगरू,
इम परमातम साध, सुज्ञानी, सुमति चरण ॥

काया, वचन, मन आदि को एकान्त आत्मबुद्धि से ग्रहण करने वाला बहिरात्म भाव है व पाप रूप है। वही कायादि का साक्षी भाव अन्तरात्म स्वरूप कहा जाता है व जो परमात्म स्वरूप ज्ञानानन्द से पूर्ण है, सर्व बाह्य उपाधि से रहित है, अतीन्द्रिय गुण समूह रूप मणियो की खान है, उसकी साधना करनी चाहिए।

नवकार के प्रथम पद की साधना बहिरात्म भाव को छुड़ाकर अन्तरात्म भाव मे स्थिर कर परमात्म भाव की भावना करवाती है। अत पुन पुन. करने योग्य है। कहा है कि —

बाह्यात्मनमपास्य, प्रसक्ति भाजाऽन्तरात्मनायोगी ।
सततं परमात्मानं, विचिन्तयेत्तन्मयत्वाय ॥

योग शास्त्र प्र० १२ श्लो० ६

बाह्यात्म भाव का त्याग कर, प्रसन्न अन्तरात्म भाव द्वारा परात्मतत्त्व का विशिष्ट चिन्तन तन्मय होने के लिए योगी निरन्तर करे।

प्रथम पद का जाप व उसके अर्थ का चिन्तन साधक को योगियो की उपर्युक्त भावना का अभ्यास करवाने वाला होता है ।

गति चतुष्टय से मुक्ति एवं अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति

नवकार का प्रथम पद 'नमो' सद् विचार का प्रेरक है, 'अरिह' पद सद् विवेक का प्रेरक है एव 'ताण' पद सद्वर्तन का प्रेरक है । सद्विचार, सद्विवेक एव सद्वर्तन ही निश्चयात्मक रूप से रत्नत्रयी है ।

व्यक्तिनिष्ठ अह मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान व मिथ्या चारित्र से युक्त है । यही अह जब समष्टिनिष्ठ बनता है तब सम्यक्-दर्शन-ज्ञान-चारित्र युक्त बनता है ।

व्यवहार से ससारी जीव मात्र कर्मबद्ध है व इसी कारण जन्म-मरण चक्र करता रहता है । निश्चयनय से ऐसी श्रद्धा ज्ञान व तदनुरूप वर्तन होता है कि जीव मात्र अनन्त चतुष्टयवान है, अष्ट कर्म से भिन्न है, तब अह स्वय ही अर्ह रूप बन जन्ममरण रूप चार गति का अन्त करता है ।

नवकार के प्रथम पद का आराधन, चिन्तन व मनन जीव को मिथ्या रत्नत्रयी से मुक्त कर सम्यक् रत्नत्रयी से युक्त करता है फलस्वरूप अनन्त चतुष्टय से युक्त कर, गति चतुष्टय से मुक्त करता हैं ।

शून्यता-पूर्णता एवं एकता का बोधक

नवकार का प्रथम पद पररूपेण नास्तित्वरूप शून्यता का बोधक है, स्वरूपेण अस्तित्वरूप पूर्णता का बोधक है एव उभय रूप से युगपत् अवाच्यत्व रूप स्वसवेद्यत्व का बोधक है

अतः वह शून्यता, पूर्णता व एकता की भावना उत्पन्न कर जीव को भक्ति, वैराग्य व ज्ञान से परिपूर्ण बनाता है।

पूर्णता का बोध भक्तिप्रेरक है, शून्यता का बोध वैराग्य-प्रेरक है एवं एकता का बोध तत्त्वज्ञान का प्रेरक है। चतुर्थ गुण स्थानक में भक्ति की प्रधानता, छट्ठे गुण स्थानक मे वैराग्य की प्रधानता एवं उससे ऊपर के गुण स्थानको मे तत्त्वज्ञान की मुख्यता मानी गई है। प्रथम पद इस प्रकार सर्व गुण स्थानको के लिए योग्य साधना की सामग्री पूरी करता है अत उसे सिद्धान्त का सार रूप कहा जाता है।

इच्छायोग-शास्त्रयोग-सामर्थ्ययोग

नवकार के प्रथम पद मे इच्छायोग, शास्त्रयोग व सामर्थ्ययोग इन तीनो प्रकार के योगो का समावेश है। नमो पद इच्छायोग का प्रतीक है, अरिह पद शास्त्रयोग का प्रतीक है व ताण पद सामर्थ्ययोग का प्रतीक है। इच्छायोग प्रमादी ज्ञानी की विकल-अपूर्ण क्रिया है, शास्त्रयोग अप्रमादी ज्ञानी की अविकल क्रिया है व सामर्थ्ययोग इनसे भी विशेष अप्रमत्त-भाव को धारण करने वालो की शास्त्रातिक्रान्त प्रवृत्ति है।

'नमो' पद शास्त्रोक्त क्रिया की इच्छा दर्शित करता है अत प्रार्थना स्वरूप है, 'अरिह' पद शास्त्रोक्त क्रिया का स्वरूप बताता है अत स्तुति स्वरूप है व 'ताण' पद शास्त्रोक्त मार्ग पर चलकर उसका पूर्णफल बताता है अत उपासना स्वरूप है। इस प्रकार नवकार के प्रथम पद मे सदनुष्ठान का प्रार्थना रूप इच्छायोग, सदनुष्ठान की स्तुतिरूप शास्त्रयोग व सद-नुष्ठान की उपासना रूप सामर्थ्ययोग गुम्फित (ग्रथित) होने से तीनो प्रकार के योगियो को उत्तम आलम्बन प्रदान करने मे समर्थ है।

इच्छायोग मे योगावचकता की प्राप्ति, शास्त्रयोग से क्रियावचकता की प्राप्ति एव सामर्थ्ययोग से फलावचकता की प्राप्ति होती है। तीनो प्रकार के अवचकयोग प्रथम पद के आराधक को क्रमश- प्राप्त होते हैं।

यही कारण मे कार्य का उपचार कर प्रथम पद की आराधना के इच्छायोग, शास्त्रयोग एव सामर्थ्ययोग के नाम घटित होते हैं। फलस्वरूप सद्गुरु की प्राप्ति रूपी योगावचकता, उनकी आज्ञा का पालन रूपी क्रियावचकता एव उसके फल-स्वरूप परम पद की प्राप्ति रूपी फलावचकता भी घटित होती है।

हेतु स्वरूप एवं अनुबन्ध से शुद्ध लक्षण वाला धर्मानुष्ठान

सद्नुष्ठान का सेवन ही धर्म का हेतु है, परिणाम की विशुद्धि ही धर्म का स्वरूप है व जव तक इहलोक परलोक के सुखदायक फल तथा मुक्ति प्राप्त नही होते तब तक पुन पुन सद्धर्म की प्राप्ति रूप अनुबन्ध ही धर्म का फल है। नमस्कार मन्त्र व उसके प्रथम पद के आराधक को इन तीनो वस्तुओ की प्राप्ति होती है। अत- वह हेतु स्वरूप तथा अनुबन्ध से शुद्ध लक्षण वाला धर्मानुष्ठान बनता है।

शास्त्रो मे धर्म का स्वरूप नीचे माफिक कहा गया है—

वचनाद्यदनुष्ठानमविरुद्धाद्यथोदितम्।
मैत्र्यादिभावसंयुक्त, तद्धर्म इति कीर्त्यते।

पूर्वापर अविरुद्ध वचन का अनुसरण कर, मैत्र्यादि भावयुक्त यथोक्त अनुष्ठान को धर्म कहा गया है। नवकार की आराधना अविरुद्ध वचनानुसारी है, सभी प्रकार के गुण स्थानको मे स्थित जीवों को उनकी योग्यतानुसार विकास

करवाने वाली है तथा मैत्री प्रमोदादि भावो से युक्त है जिससे यथोक्त धर्मानुष्ठान सम्पादित होता है। इसका फल इस लोक मे अर्थ, काम, आरोग्य, अभिरति व परलोक मे मुक्ति व उस मुक्ति की प्राप्ति न होने तक सद्गति, उत्तम कुल में जन्म व सद्बोध की प्राप्ति आदि अवश्य करवाता है।

दूसरी प्रकार से यह कहा जा सकता है कि नमो धर्म का वीज है क्योकि उसमें सद्धर्म व उसको धारण करने वाले सत्पुरुषो की प्रशसादि निहित है, धर्म-चिन्तन आदि उसमें अकुरित है व परम्परा से निर्वाण रूप परमफल स्थित है अत उसका आराधन अत्यन्त आदरणीय है। इस हेतु कहा गया है कि --

'वपनं धर्मवीजस्य, सत्प्रशंसादि तद्गतम्।
तच्चिन्ताद्यंकुरादि स्यात्, फलसिद्धिस्तु निर्वृति.।'

'नमो अरिहताण' पद के आराधन मे धर्मबीज का वपन, धर्मचिन्तन आदि अंकुर व फलसिद्धिरूपी निर्वाण पर्यन्त के सुख स्थित है।

आगम-अनुमान-ध्यानाभ्यास

नमो पद से धर्म का श्रवण, अरिह पद से धर्म का चिन्तन तथा ताण पद से धर्म की भावना उत्पन्न होती है। श्रुत, चिन्तन तथा भावना को क्रमश उदक (जल) पय (दूध) व अमृत तुल्य कहा गया है। उदक मे प्यास बुझाने की जो शक्ति है उससे अधिक पय मे अर्थात् दूध में है तथा उससे भी अधिक अमृत मे है। धर्म का श्रवण विषयो की जिम तृषा को शान्त करता है उमसे अधिक तृषा को धर्म का चिन्तन शान्त करता है तथा उससे भी अधिक धर्म की भावना, ध्यान, निदिध्यासनादि शान्त करते है। विषयो की तृषा तथा कषायो की क्षुधा की तृप्त करने को शक्ति प्रथम पद की

अर्थभावना मे स्थित है क्योकि उसके तीनो पदो द्वारा धर्म के श्रवण-मनन निदिध्यासन आदि तीनो कार्य सिद्ध होते है। धर्म की तथा योग की सिद्धि हेतु जो तीनो उपाय शास्त्रकारों ने बताये है उन तीनो की आराधना प्रथम पद की आराधना से सिद्ध होती है। इस हेतु योगाचार्यों ने कहा है कि –

आगमेनानुमानेन, ध्यानाभ्यासरसेन च ।
त्रिधा प्रकल्पयन् प्रज्ञा, लभते योगमुत्तमम् ।

आगम, अनुमान तथा ध्यानाभ्यास का रस इन तीनो उपायो से प्रज्ञा को जब समर्थ बनाया जाता है तब उत्तमयोग की अथवा उत्तम प्रकार से योग की अर्थात् मोक्ष मार्ग की प्राप्ति होती है। योग द्वारा जो योग साधना करनी होती है उन तथा मोक्ष दोनो की प्रथम श्रद्धा आगम के श्रवण द्वारा उत्पन्न होती है। फिर अनुमान, युक्ति आदि के विचार द्वारा प्रतीति होती है तथा अन्त मे ध्यान निदिध्यासन द्वारा स्पर्शना अर्थात् प्राप्ति होती है ।

आगम, अनुमान, ध्यान अथवा श्रुत, चिन्ता तथा भावना क्रमश श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन के ही पर्यायवाचक शब्द है तथा उन तीनो अंगो की आराधना प्रथम पद की अर्थ भावना युक्त आराधना द्वारा होती है।

धर्मकाय, कर्मकाय तथा तत्त्वकाय अवस्था

तीर्थंकरो की धर्मकाय, कर्मकाय तथा तत्त्वकाय ये तीन अवस्थाए होती हैं। शास्त्र की परिभाषा मे उन्हे क्रमश पिण्डस्थ, पदस्थ तथा रूपातीत नाम से सम्बोधित किया जाता है। धर्मकाय अथवा पिडस्थ अवस्था प्रभु की सयक्त्व प्राप्ति के पश्चात् होती धर्म साधना को कहा जाता है। अन्तिम भव

के अन्दर भी जब तक घाती कर्म का क्षय होता नहीं, तब तक उसकी जन्मावस्था, राज्यावस्था तथा चारित्र ग्रहण करने के बाद केवल ज्ञान न हो तब तक छद्मस्थावस्था की आराधना को धर्मकाय की अवस्था कहा गया है। उसके बाद घाती कर्म का क्षय, कैवल्य की प्राप्ति होने के पश्चात् धर्मतीर्थ की स्थापना तथा निरन्तर धर्मोपदेशादि के द्वारा परोपकार की प्रवृत्ति कर्मकाय अवस्था है। योगनिरोधरूप शैलेशीकरण को तत्त्वकाय अवस्था कहा गया है।

इन तीनो अवस्थाओ का ध्यान तथा आराधना नवकार के प्रथम पद की आराधना से होता है। उसमे नमो पद धर्मकाय अवस्था का प्रतीक बनता है, अरिह पद कर्मकाय अवस्था का प्रतीक बनता है तथा ताण पद तत्त्वकाय अवस्था का प्रतीक बनता है।

इस प्रकार प्रभु की पिंडस्थ, पदस्थ तथा रूपातीत अवस्थाओ की आराधना का साधन नवकार के प्रथम पद द्वारा होने से प्रथम पद का जाप ध्यान तथा अर्थ-चिन्तन पुन पुन. करने योग्य है।

अमृत अनुष्ठान

प्रथम पद द्वारा परमात्मा की स्तुति, परमात्मा का स्मरण तथा परमात्मा का ध्यान सरलता से हो सकता है। नाम ग्रहण द्वारा स्तुति, अर्थभावना द्वारा स्मरण तथा एकाग्रचिन्तन द्वारा ध्यान सभव हो सकता है।

श्रद्धा, मेधा, धृति, धारणा तथा अनुप्रेक्षा द्वारा होती प्रभु की स्मृति तथा ध्यान क्रमश. बोधि, समाधि तथा सिद्धि का कारण बनते है।

'नमो अरिहंताण' पद योग की इच्छा, योग की प्रवृत्ति, योग का स्थैर्य व योग की सिद्धि करवाता है, इतना ही नही पर

प्रीति, भक्ति, वचन व असग ये चारो प्रकार के अनुष्ठान की प्राप्ति करवाकर निर्विघ्न रूप से जीवो को मोक्ष मे ले जाता है।

योग के पाचो अग जैसे स्थान, वर्ण, अर्थ, आलवन तथा अनालवन तथा आगमोक्त योग की आठो अवस्थाए जैसे तच्चित्, तन्मय, तल्लेश्य, तदध्यवसाय, तत्तीव्र अध्यवसाय तदर्थोपयुक्त, तदर्पितकरण तथा तद्भावनाभावित पर्यन्त को अवस्था प्रथम पद के आलवन द्वारा सिद्ध की जा सकती है।

द्रव्य-क्रिया को भाव-क्रिया वनाने वाली तथा तद् हेतु अनुष्ठान को अमृत अनुष्ठान वनाने वाली जिन चित्तवृत्तियो को शास्त्रकारो ने कहा है, उन सवका आराधन प्रथम पद के आलम्बन द्वारा हो सकता है।

अर्थ का आलोचन, गुण का राग तथा भाव की वृद्धि ये तीन गुण द्रव्यक्रिया को भावक्रिया वनाते हैं तथा तद्गत चित्त, शास्त्रोक्त विधान, भाव की वृद्धि, भव का भय, विस्मय-पुलक एव प्रधान प्रमोद उस तद्-हेतु अनुष्ठान को अमृत अनुष्ठान बनाते है। इस हेतु कहा गया है कि —.

तद्गत चित्त ने समय विधान,
भावनी वृद्धि भय, भय अति घणोजी,
विस्मय पुलक प्रमोद प्रधान,
लक्षण ए छे, अमृत क्रिया तणोजी।

भाव प्राणायाम का कार्य

नमो पद वाह्यभाव का रेचन करवाता है, आन्तरभाव का पूरक वनता है तथा परमात्मभाव का कुभक करवाता है जिससे वह भाव-प्राणायाम का कार्य भी करता है। भावप्राणायाम ज्ञानावरण का क्षय तथा योग के ऊपर के ध्यानादि अङ्गो की

सिद्धि करवाने वाली होने से मात्र शरीर स्वास्थ्य को सुधारने वाले द्रव्य प्राणायाम की अपेक्षा उत्कृष्ट है। उसका आराधन प्रथम पद के आलम्बन से सुन्दर प्रकार से होने से प्रथम पद अत्यन्त उपादेय है।

आगमो मे नमस्कार पद का अर्थ निम्न प्रकार से कहा गया है —

मणसा गुण परिणामो, वाया गुण भासणं च पंचरहं ।
कायेण सपणामो, एस पयत्थो नमुक्कारो ॥

मन से पचपरमेष्ठि के गुणो का परिणमन, वाणी से नचपरमेष्ठि के गुणो का भापण तथा काया से पचपरमेष्ठि भगवान् को सम्यक् प्रणाम करना ही नमस्कार पद का अर्थ है ।

नमो पद द्वारा मन मे गुणो का परिणाम होता है, अरिह पद द्वारा गुणो का भाषण होता है तथा ताण पद द्वारा काया का प्रणमन होता है। अथवा तीनो पद मिलकर परमेष्ठि भगवान् के गुणो का परिणमन, भाषण तथा प्रणमन करवाते है तथा उससे मन, वचन, काया के तीनों योगो का सार्थक्य होता है ।

भव्यत्व परिपाक के उपाय एवं आभ्यन्तर तप

नवकार के प्रथम पद के जाप तथा ध्यान द्वारा भव्यत्व परिपाक के तीनो उपाय क्रमश. दुष्कृत गर्हा, सुकृतानुमोदन तथा शरण गमन एक ही साथ सावित होते है। अभ्यन्तर तप के भी छओ प्रकार क्रमश. प्रायश्चित, विनय, वैयावच्च, स्वाध्याय, ध्यान तथा कार्योत्सर्ग का भी एक ही माथ सेवन होता है।

नमो पद दुष्कृत की गर्हा करवाता है, अरिह पद सुकृत की अनुमोदना करवाता है तथा ताण पद शरण गमन की क्रिया करवाता है। इसी प्रकार नमो पद द्वारा पाप का प्रायश्चित तथा गुणो का विनय होता है, अरिह पद द्वारा भाव वैयावच्य एव स्वाध्याय होता है तथा ताण पद द्वारा परमात्मा का ध्यान एव देहभाव का विसर्जन होता है।

दुष्कृत गर्हादि द्वारा जीव की मुक्तिगमन-योग्यता परिपक्व होती है तथा प्रायश्चित-विनयादि तप द्वारा क्लिष्ट कर्मो का विगम तथा भाव-निर्जरा होती है।

समापत्ति, आपत्ति एवं सम्पत्ति

नवकार के प्रथम पद मे ध्याता ध्येय तथा ध्यान तीनो की एकता रूप समापत्ति साधित होती है। अत तीर्थंकर नाम कर्म के उपार्जन रूप आपत्ति तथा उसके विपाकोदय रूप सम्पत्ति की भी प्राप्ति होती है। 'नमो' पद ध्याता की, अरिह पद ध्येय की तथा ताण पद ध्यान की शुद्धि सूचित करता है। इन तीनो की शुद्धि द्वारा तीनो की एकता रूप समापत्ति तथा उसके परिणामस्वरूप आपत्ति अर्थात् तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन तथा बाह्यान्तर सम्पत्ति प्राप्त होती है।

ज्ञानसार ग्रन्थ के ध्यानाष्टक मे कहा गया है कि —

ध्याता ध्येय तथा ध्यान, त्रय यस्यैकतां गतम् ।
मुनेरनन्यचित्तस्य, तस्य, दुःखं न विद्यते ॥१॥
ध्याताऽन्तरात्मा ध्येयस्तु, परमात्मा प्रकीर्तित ।
ध्यान चैकाग्र सवित्ति समापत्तिस्तदेकता ॥२॥
आपत्तिश्च तत पुण्य-तीर्थकृत् कर्म बन्धत ।
तद्भावाभिमुखत्वेन, सम्पत्तिश्च क्रमाद्भवेत् ॥३॥
इत्थ ध्यान फलाद्युक्त, विंशतिस्थानकाद्यपि ।
कष्टमात्र त्वभव्यानामपि नो दुर्लभ भवे ॥४॥

ध्यान का फल समापत्ति, आपत्ति (तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन) तथा सम्पत्ति (तीर्थंकर नाम कर्म का विपाकोदय) रूप होने से विंशति स्थानक तप आदि का आराधन सफल माना गया है। जिससे वह फल प्राप्त नही होता। न ही उसके लिए वह आराधन कष्टमात्र फल वाला है तथा वह तो इस भवचक्र में अभव्यो को भी दुर्लभ नही।

नवकार के प्रथम पद का भाव से होता आराधन इस प्रकार समापत्ति आदि भेद द्वारा सफल होने से अत्यन्त उपादेय है।

धर्म ध्यान एवं शुक्ल ध्यान

शास्त्रो मे आज्ञाविचय, उपायविचय, विपाकविचय तथा सस्थानविचय आदि चार प्रकार का ध्यान कहा गया है। वह 'धर्म-ध्यान नवकार के प्रथम पद नमो पद की अर्थभावना द्वारा साधा जा सकता है।

नमस्कार मे प्रभु की आज्ञा का विचार है, रागादि दोपो की अनिष्टकारिता तथा ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकार के कर्मो के विपाक की निरसता का भी विचार है। चौदह राज-लोक रूप विस्तार वाले आकाश प्रदेशो मे धर्मस्थान की प्राप्ति की आत्यन्तिक दुर्लभता है यह विचार रुपी सस्थानविचय ध्यान भी उसी में निहित है।

'अरिह' पद मे शुक्ल ध्यान के प्रथम दो भेद पृथक्त्व वितर्क-सविचार तथा एकत्व वितर्क-अविचार तथा 'ताण' पद शुक्ल ध्यान के अन्तिम दो भेद सूक्ष्म क्रिया-अप्रतिपाति तथा व्युपरत-क्रिया-अनिवृत्ति का विचार निहित है। इस प्रकार अर्थ-भावनापूर्वक प्रथमपद का जाप धर्मध्यान के चारो स्तम्भ तथा शुक्लध्यान के स्तम्भो का एक साथ संग्राहक होने से अति

उज्ज्वल लेश्या का उत्पादक होता है। अत. आत्मार्थी जीवो के लिए अत्यन्त उपादेय है तथा पुन पुन करने योग्य है।

तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान

योगशतक मे कहा गया है कि--

सरण भए उवायो
रोगे किरिया विसम्मि मंतो य ।
एए वि पापकम्मो—
वक्कमभेया उतत्तोणं ॥ १॥

सरणं गुरु य इत्थं,
किरिया उतवोत्ति कम्मरोगम्मि ।
मंतो पुण सज्झाओ,
मोह विसविणासणो पवरो ॥ २॥

जव अन्य से भय उत्पन्न होता है तव समर्थ की शरण मे जाना ही उसका उपाय है। कुष्ठादि व्याधि का उपाय जैसे योग्य चिकित्सा है, तथा स्थावर-जगम रूप विप के उपद्रव का निवारण जैसे देवाधिष्ठित अक्षरन्यास रूप मन्त्र है वैसे ही भयमोहनीय आदि पापकर्मों का उपक्रम अर्थात् विनाश करने के उपाय शरणागति आदि को ही कहा गया है।

शरण्य गुरुवर्ग है, कर्मरोग की चिकित्सा वाह्य आभ्यन्तर तप है, तथा मोह विप का विनाश करने मे समर्थ मन्त्र पाँच प्रकार का स्वाध्याय है। पातजल योग सूत्र मे भी कहा गया है कि—

तप स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोग ।
समाधिभावनार्थ· क्लेशतनूकरणार्थश्च ॥

(२।१-२)

तप, स्वाध्याय एव ईश्वरप्रणिधान क्रियायोग है। उससे क्लेश की अल्पता एव समाधि की प्राप्ति होती है। नवकार का प्रथम पद 'नमो अरिहताण' समाधि की भावना एव अविद्यादि क्लेशो का निवारण करता है। नमो पद से कर्मयोग की चिकित्सा रूप वाह्य आभ्यन्तर तप, अरिह पद द्वारा स्वाध्याय एव ताण पद द्वारा ईश्वरप्रणिधान—एकाग्रचित से परमात्म-स्मरण होता है। प्रथम पद के विधिपूर्वक जाप से श्रद्धा वढती हैं; वीर्य प्रज्ञा बडती है तथा अन्त मे कैवल्य की प्राप्ति होती है।

अष्टांग-योग

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एव ममाधि ये योग के आठ अङ्ग कहे गए है। उस प्रत्येक अङ्ग की साधना विधियुक्त नवकार मन्त्र को गिनने वाले को सिद्ध होती है। नवकार मन्त्र को गिनने वाला अहिंसक वनता है, सत्यवादी होता है, अचौर्य, व्रह्मचर्य एव अपरिग्रह व्रत का भी आराधक होता है। नवकार मन्त्र के आराधक की वाह्यान्तर शौच एव सन्तोष तथा पूर्वकथनानुसार तप, स्वाध्याय एव ईश्वर-प्रणिधान रूप नियमो की साधना होती है। नवकार मन्त्र को गिननेवाला स्थिर एव सुखासन की तथा वाह्याभ्यन्तर प्राणायाम की साधना करने वाला भी होता है।

नवकार का साधक इन्द्रियो का प्रत्याहार, मन की धारणा एव बुद्धि की एकाग्रतारूप ध्यान तथा अन्त करण की समाधि का अनुभव करता है। नमो पद से नाद की, अरिहं पद से विन्दु की एव ताण पद से कला की साधना होती है। नवकार मन्त्र से नास्तिकता, निराशा एव निरुत्साहिता नष्ट होती है तथा नम्रता, निर्भयता एव निश्चिन्तता प्राप्त होती है। नवकार

मन्त्र मे स्वय की कर्मबद्ध अवस्था का स्वीकार होता है, अरिहृतो की कर्मयुक्त अवस्था का ध्यान होता है एव कर्ममुक्ति के उपाय-स्वरूप ज्ञान, दर्शन एव चारित्र का आराधन होता है।

क्षायिकभाव की प्राप्ति

नवकार मन्त्र से औदयिक भावो का त्याग, क्षायोपशमिक-भावो का आदर एव परिणाम-स्वरूप क्षायिकभावो की प्राप्ति होती है। नवकार मन्त्र के आराधक को मधुर परिणाम की प्राप्ति रूप सामभाव, तुला परिणाम की आराधना रूप सम-भाव एव क्षीरखण्ड युक्त अत्यन्त मधुर परिणाम की आराधना रूप समभाव की परिणति का लाभ होता है। नवकार की आराधना से चिन्तामणि, कल्पवृक्ष एव कामकुम्भ से भी अधिक श्रद्धेय, ध्येय एव शरण्य की प्राप्ति होती है।

नमो पद से क्रोध का दाह शमित होता है, अरिह पद से विपय-तृपा नष्ट होती है एव ताण पद से कर्म का पक शोषित होता है। दाह शमन से शान्ति होती है, तृषा मिटने से तुष्टि होती है एव पक शोषण से पुष्टि होती है। अत इस मन्त्र के लिए तीर्थ-जल की एव परमान्न की उपमाएँ सार्थक होती हैं। परमान्न का भोजन जैसे क्षुधा निवारण कर चित्त को तुष्ट एव देह को पुष्ट करता है वैसे ही इस मन्त्र का आराधन भी विषय-क्षुधा का निवारक होने से मन को शान्त कर चित्त को तुष्ट एव आत्मा को पुष्ट करता है। 'नमो' उपशम है, 'अरिह' विवेक है एव ताण सवर है।

नवकार मन्त्र मे कृतज्ञता एव परोपकार, व्यवहार एव निश्चय, अध्यात्म एव योग, ध्यान एव समाधि, दान एव पूजन, शुभ विकल्प एव निर्विकल्प, योगारम्भ एव योगसिद्धि, सत्त्व-शुद्धि एव सत्त्वातीतता, पुरुषार्थ एव सिद्धि, सेवक तथा सेव्य,

कृपापात्र एवं करुणावान आदि साधना की समग्र सामग्री निहित है। इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया का सुन्दर सुमेल होने से आत्मशक्ति के विकास हेतु उसमे परिपूर्ण सामर्थ्य है। अतः शास्त्रो में कहा गया हे कि---

एसो अणाई कालो,
अणाई जीवो य अणाई जिण धम्मो ।
तइवाविते पढंता,
ऐसुच्चिय जिण नमुक्कारो ॥

काल अनादि है, जीव अनादि है एव जिन धर्म भी अनादि है। अत यह नमस्कार अनादिकाल से किया जा रहा है एव अनन्तकाल तक किया जायगा एव इसे करने वाले एव करवाने वाले का अनन्त कल्याण सम्पादित करेगा।

भव्यत्व परिपाक के उपाय

कर्म से सम्पृक्त होने की जीव की स्वय की योग्यता को सहज-मल कहा जाता है एव मुक्ति से सम्पृक्त होने की जीव की योग्यता को भव्यत्व स्वभाव कहा जाता है। प्रत्येक जीव की योग्यता भिन्न-भिन्न होती है उसे तथा-भव्यत्व कहते है। सहजमल का ह्रास एव तथाभव्यत्व का विकास तीन साधनो से होता है जिसमे प्रथम दुष्कृत गर्हा, द्वितीय सुकृतानुमोदन तथा तृतीय अरिहतादि चार वस्तुओ की शरण जाना है।

मुख्य रूप से दुष्कृत गर्हा का प्रतिबन्धक राग दोष है, सुकृतानुमोदन का प्रतिबन्धक द्वेप दोष है एवं शरण गमन का प्रतिबन्धक मोह दोप है। राग दोप ज्ञानगुण से जीता जाता है, द्वेष दोप दर्शनगुण से जीता जाता है एव मोह दोप चारित्र गुण से जीता जाता है।

ज्ञान गुण की पराकाष्ठा 'नमो' भाव मे है, दर्शन गुण की पराकाष्ठा 'अर्हं' भाव मे है एव चारित्र गुण की पराकाष्ठा 'शरण' भाव मे है। ज्ञान गुण मगल रूप है, दर्शन गुण लोकोत्तम स्वरूप है एव चारित्र गुण शरणागति रूप है। इस प्रकार रत्नत्रयी का विकास आत्मा की मुक्ति-गमन योग्यता का परिपाक करता है एव ससार भ्रमण की योग्यता का नाश करता है।

स्वदोष दर्शन एवं परगुण दर्शन

चार वस्तुएँ मगल है, चार वस्तुएँ लोक मे उत्तम है एवं चार वस्तुएं शरण ग्रहण करने योग्य है। मगल की भावना ज्ञान-स्वरूप है, उत्तम की भावना दर्शन स्वरूप है एव शरण की भावना चारित्र स्वरूप है। ज्ञान से राग दोष जाता है, दर्शन से द्वेष दोष जाता है एव चारित्र से मोह दोष जाता है।

राग जाने से स्वय के दोष दिखते है, द्वेष जाने से दूसरो के गुण दिखते हैं एव मोह जाने से शरणभूत आज्ञा का स्वरूप जाना जाता है। स्वदोष दर्शन दोष की गर्हा करवाता है, परगुण दर्शन दूसरो की अनुमोदना करवाता है एव आज्ञा का स्वरूप समझने से आज्ञा की शरण मे रहने की वृत्ति पैदा होती है।

गुणवान की आज्ञा ही स्वीकार करने योग्य है। दोष जाने से ही गुण प्रकट होते हैं। आज्ञा का आराधन करने से ही दोष जाता है। अत मोक्ष का हेतु आज्ञा का आराधन होता है एव आज्ञा की विराधना ही ससार का कारण होती है। स्वमति-कल्पना का मोह आज्ञा पालन के अध्यवसाय से ही जाता है एव उसके जाने से शरण स्वीकार करने हेतु वल पैदा होता है।

अरिहत की शरण, सिद्ध की शरण, साधु की शरण एवं केवली प्रज्ञप्त धर्म की शरण अरिहतादि चारो की लोकोत्तमता के ज्ञान पर आधारित है। इन चारो की लोकोत्तमता इन चारो की मगलमयता पर आधारित है। उनकी मगलमयता उसके ज्ञान, दर्शन, चारित्र पर आधारित है एव ज्ञान, दर्शन, चारित्र की मगलमयता राग, द्वेप एव मोह का प्रतिकार करने के सामर्थ्य मे निहित है।

योग्य की शरण से योग्यता का विकास

जीव को सवसे अधिक राग स्वयं पर होता है। उस राग के कारण स्वय मे निहित अनन्तानन्त दोपो का दर्शन नही होता। स्वय का राग दूसरो के प्रति द्वेष का आविर्भाव करता है इसी दोप के प्रभाव से गुणदर्शन नही होता। स्वदोपदर्शन एव परगुणदर्शन नही होने से मोह का उदय होता है, मोह का उदय होने से वुद्धि तिरोहित होती है एव यह वुद्धि का आवरण शरणीय की शरण स्वीकार करने मे अन्तरायभूत होता है।

योग्य की शरण स्वीकार नही करने से अयोग्यता को नियन्त्रित नही किया जा सकता। अपनी अयोग्यता कर्मवन्धन के कारणो के प्रति उदासीन करवाती है एव कर्मक्षय के कारणो के प्रयोग मे प्रतिवन्धक बनती है। कर्मवन्धन के कारणो से पराङ्मुख वनने हेतु एव कर्मक्षय के कारणो के सम्मुख होने हेतु योग्यता विकसित करनी चाहिए।

योग्य की शरण लेने से योग्यता विकसित होती है। योग्य की शरण लेने की योग्यता स्वदोपदर्शन एव परगुणग्रहण से उत्पन्न होती है। राग द्वेप की कमी होने से परगुणदर्शन एव

स्वदोषदर्शन होता है एव राग-द्वेप की कमी ज्ञानदर्शन गुण के विकास होने से होती है। अरिहतादि की मगलमयता एव लोकोत्तमता को देखने से एव उनकी शरण स्वीकार करने से ज्ञान-दर्शन गुण का विकास होता है।

दुष्कृत एवं सुकृत

वीतराग परमात्मा निग्रहानुग्रह सामर्थ्य-युक्त एव सर्वज्ञ-सर्वदर्शित्व गुण को धारण करने वाले होने से सर्वपूज्य है। रागदोप जाने से करुणा गुण प्रकट होता है, द्वेप दोप जाने से माध्यस्थ्य भाव प्रकट होता है। करुणा गुण का स्थायीभाव अनुग्रह है एव माध्यस्थ्य गुण का स्थायीभाव निग्रह है। स्वय का पक्षपात ही राग है। स्वयं के अतिरिक्त सभी की उपेक्षा ही द्वेष है। राग दुष्कृत-गर्हा का प्रतिबन्धक है। यहाँ दुष्कृत का अर्थ है स्वकृत अनन्तानन्त-अपराध एव सुकृत का अर्थ है परकृत अनन्तानन्त उपकार। स्वय के अपराध की निन्दा एवं दूसरो के उपकार की प्रशसा तभी हो सकती है जव अप्रशस्त राग द्वेप नष्ट हो जाय। ज्ञानदर्शन गुण रागद्वेष का प्रतिपक्षी है अर्थात् रागद्वेष जाने से एक तरफ अनन्त ज्ञानदर्शनगुण प्रकट होता है दूसरी तरफ निग्रहानुग्रह सामर्थ्य प्रकट होता है एव उन दोनो के कारणभूत करुणा एव माध्यस्थ्यभाव जाग्रत होते है।

वीतराग अर्थात् करुणानिधान एव माध्यस्थ्यगुण के भण्डार, तथा वीतराग अर्थात् अनन्त ज्ञान, दर्शन स्वरूप केवल ज्ञान एव केवलदर्शन के स्वामी, सर्ववस्तु को जानने वाले एव देखने वाले होते हुए भी सभी से अलिप्त रहने वाले, सभी के ऊपर स्वप्रभाव को डालने वाले पर किसी के भी प्रभाव मे कभी भी नही आने वाले प्रभु।

आत्मा में स्थित अचिन्त्य शक्ति का स्वीकरण

इस प्रकार वीतरागिता निष्क्रियता स्वरूप नही, सर्वोच्च सक्रियता रूप है । वह क्रिया अनुग्रह-निग्रह रूप है तथा अनुग्रह-निग्रह रागद्वेप के अभाव मे से उत्पन्न हुई आत्म-रूप है । आत्मा की सहजशक्ति जब आवरण रहित होती है तब उसमे से एक तरफ सर्वज्ञता-सर्वदर्शिता प्रकट होती है तथा दूसरी तरफ निग्रह-अनुग्रह सामर्थ्य प्रकट होता है । उन दोनो को प्रकटीभूत करने का उपाय आवरण रहित होना है । आवरण रागद्वेप तथा अज्ञानरूप है । अज्ञान टालने हेतु स्व-अपराध का स्वीकरण तथा परकृत उपकार का अगीकार तथा इन दोनो के साथ अचिन्त्यशक्तियुक्त आत्मतत्त्व का आश्रय अनिवार्य है । आत्मतत्त्व के आश्रय का अर्थ है आत्मा मे स्थित अचिन्त्यशक्ति का स्वीकरण । यह स्वीकरण होने से अनन्तानुबन्धी राग-द्वेप टल जाते हैं । अननुभूतपूर्व समत्वभाव प्रकट होता है । यह समत्वभाव अपक्षपातिता तथा माध्य-स्थ्यवृत्तिता रूप है । स्वदोष ही बडे से बडे पक्षपात का विषय है । स्वय निर्गुण तथा दोषवान होते हुए भी अपने को निर्दोप तथा गुणवान मानने का वृत्तिरूप पक्षपात समत्वभाव से टल जाता है ।

वीतराग अवस्था ही परम पूजनीय है

ऐसा माध्यस्थ्यवृत्तिता रूप समत्वभाव द्वेष दोष का प्रतिकार रूप है क्योकि परकृत उपकार का महत्त्व स्वकृत उपकार के महत्त्व के समान ही है या उससे भी अधिक है । दोनों प्रकार का समत्व राग-द्वेष को निर्मूल कर आत्मा के शुद्ध स्वभाव रूप केवलज्ञान-केवलदर्शन को उत्पन्न करता है । उसमें लोकालोक प्रतिभासित होते हैं परन्तु वह किसी से भी

प्रतिभासित नही होना क्योकि वह स्वयंभू है। अत वीतराग अवस्था ही परम पूज्य है तथा उसे प्राप्त करने के उपाय भूत दुष्कृत - गर्हा, सुकृतानुमोदन तथा शरणगमन परम उपादेय हैं--

वीतरागोऽप्यसौ देवो, ध्यायमानो मुमुक्षुभि ।
स्वर्गापवर्गफलद शक्तिस्तस्य हि तादृशी ॥१॥

यह देव वीतराग होते हुए भी जव मुमुक्ष द्वारा ध्यायित होता है तव स्वर्गापवर्गरूपी फल को प्रदान करता है क्योकि उनको निश्चित रूप से वैसी ही शक्ति है

वीतरागोऽप्यसौ ध्येयो, भव्याना स्याद् भवच्छिदे।
विछिन्न बन्धनस्यास्य तादृग् नैसर्गिको गुण ॥२॥

यह ध्येय वीतराग होते हुए भी भव्य जीवो को भवोच्छेद में सहायक होता है। वन्धन-मुक्त आत्माओ मे यह गुण नैसर्गिक रूप से विद्यमान रहता है।

ध्याताओ का राग-द्वेप का उन्मूलन करना ही वीतराग आत्माओं का स्वभाव है। स्वभावोऽतर्क गोचर·--स्वभाव तर्क का अविषय है। वस्तु का स्वभाव ही स्व-पर के ससार का नाशक है। वस्तु स्वभाव मात्र ही तर्क से अग्राह्य है।

सच्चा सुकृतानुमोदन

दुष्कृत मात्र का प्रायश्चित पदार्थवृत्ति है। परपीडा से दुष्कृत का उपार्जन होता है। अत. उसकी विपक्ष पदार्थवृत्ति का सेवन ही उसके निराकरण का उपाय है।

वृत्तिमात्र मन, वचन, काया से होती है। उसमे दुष्टत्व लाने वाला परपीडा का अध्यवसाय है तथा वह अध्यवसाय रागभाव मे से या स्वार्थभाव मे से उत्पन्न होता है। स्वार्थभाव

का प्रतिपक्षी भाव परार्थभाव है। अत परार्थभाव ही भव्यत्व परिपाक का तात्त्विक उपाय है, परन्तु वह परार्थभाव परपीड़ा के प्रायश्चित स्वरूप होना चाहिए।

परार्थभाव से एक ओर नूतन परपीड़ा का वर्जन होता है तथा दूसरी तरफ पूर्वकृत परपीडा का शुद्धीकरण होता है। अत. परार्थभाव ही सच्ची दुष्कृतगर्हा है। दुष्कृत गर्हणीय है, त्याज्य है, हेय है, ऐसी सच्ची बुद्धि उसे ही उत्पन्न हुई मानी जाती है जो कि सुकृत को स्पष्टभाव से अनुमोदनीय, उपादेय तथा आदरणीय मानता है।

परपीड़ा दुष्कृत है तथा परोपकार सुकृत है। परोपकार में कर्त्तव्यबुद्धि उत्पन्न होना ही दुष्कृत-मात्र का सच्चा प्रायश्चित है। जो परोपकार को कर्त्तव्य मानता है उसमे एक दूसरा गुण भी उत्पन्न होता है जिसका नाम कृतज्ञता है।

अपने लिए दूसरो द्वारा किया गया उपकार जिसकी स्मृति मे नही है वह परोपकार गुण को समझा ही नही है। कृतज्ञता गुण सुकृत का अनुमोदन करवाता है तथा उससे उपकारवृत्ति दृढ होती है। इतना ही नही दूसरो का भला करने का अहकार भी उसमे विलीन हो जाता है। स्वकृत परोपकार अपन लिए दूसरो के द्वारा किए गए उपकार की तुलना मे शतांश, सहस्राश अथवा लक्षांश भाग भी नही होता। परार्थभाव के साथ कृतज्ञतागुण सयुक्त हो तो ही परार्थभाव तात्त्विक बनता है।

अरिहंतादि की शरणगमन

परार्थवृत्ति तथा कृतज्ञतागुण से दुष्कृतगर्हा तथा सुकृतानुमोदन रूप भव्यत्व परिपाक के दोनो उपायो का सेवन होता है, तीसरा उपाय अरिहतादि चारो की शरण मे जाना है। यहाँ शरणगमन का अर्थ है—जो परार्थभाव तथा कृतज्ञता

गुण के स्वामी है उन्हे ही आदर्श मानना, उनके ही सत्कार, सम्मान, आदर तथा बहुमान को स्वय का कर्त्तव्य समझना।

परार्थभाव तथा कृतज्ञता गुण के सच्चे अर्थी जीवो मे उन दो भावो की चरम सीमा तक पहुँचने वालो की शरणागति, भक्ति, पूजा, बहुमान आदि सहज रूप मे आ जाते है। यदि वे नही आवे तो समझना चाहिए कि उसके हृदय मे उत्पन्न दुष्कृत-गर्हा अथवा सुकृतानुमोदन का भाव सानुबन्ध तथा ज्ञान-श्रद्धायुक्त नही है।

ज्ञान एव श्रद्धा से विहीन दुष्कृतगर्हा तथा सुकृतानुमोदन का भाव निरनुबन्ध होता है, क्षणमात्र टिक कर चला जाता है। अत उसे सानुबन्ध बनाने हेतु उन दो गुणो को प्राप्त करना तथा उनकी चरम सीमा मे पहुँचे हुए पुरुषो की शरणागति अपरिहार्य है।

यह शरणागति परार्थभाव तथा कृतज्ञता गुण को सानुबन्ध बनाने हेतु सामर्थ्य प्रदान करती है, वीर्य बढाती है, उत्साह जाग्रत करती है तथा उसी की तरह जब तक पूर्णत्व प्राप्त न हो अर्थात् उन दो गुणो की क्षायिकभाव से सिद्धि न हो तब तक साधना मे विकास होता रहता है। उसे अनुग्रह भी कहते है। साधना मे उत्तरोत्तर विकास कर सिद्धि-प्राप्ति तक पहुँचाने वाले श्रेष्ठ प्रकार के आलम्बनो के प्रति आदर का परिणाम तथा उससे प्राप्त होती सिद्धि उन्ही का अनुग्रह गिना जाता है। कहा है कि —

आलम्बनादरोद्भूत प्रत्यूहक्षययोगत।
ध्यानाद्यारोहणभ्रशो, योगिनां नोपजायते॥
—अध्यात्मसार

ऊँचे चढ़ने मे आलम्बनभूत होने वाले तत्त्वो के प्रति आदर के परिणाम स्वरूप सिद्धि मे वाधक विघ्नो का क्षय होता है तथा उस विघ्नक्षय से योगी पुरुष ध्यानादि के आरोहण से भ्रष्ट नही होते हैं।

आलम्बनो के आदर से होते प्रत्यक्ष लाभ को ही शास्त्रकार अरिहतादि अनुग्रह का कहते है।

स्वरूपबोध का कारण

जिसका आलम्बन लेकर जीव आगे बढता है यदि उसके उपकार हृदय मे धारण नही करे तो फिर वह पतित हो जाता है। अर्थात् परार्थवृत्ति रूपी दुष्कृतगर्हा, कृतज्ञता गुण के पालन स्वरूप सुकृतानुमोदना तथा उन गुणो की सिद्धि को वरण किए हुए महापुरुषो की शरणागति, ये तीनो उपाय मिलकर जीव की मुक्तिगमन-योग्यता विकसित करते है तथा भवभ्रमण की शक्ति का क्षय करते है। सच्ची दुष्कृतगर्हा तथा सुकृतानुमोदन दुष्कृत रहित एव सुकृतवान् तत्त्वो की भक्ति के साथ सयुक्त ही होती है। अत. एकमात्र भक्ति को ही मुक्ति की दूती कहा गया है।

कृतज्ञतागुण सुकृत की अनुमोदना रूप है। परार्थवृत्ति दुष्कृतगर्हा रूप है। दुष्कृतगर्हा रूप परार्थवृत्ति तथा सुकृत को अनुमोदनारूप कृतज्ञताभाव से विशुद्ध अन्त करण मे शुद्ध आत्मतत्त्व का प्रतिविम्ब पडता है। शुद्ध आत्मतत्त्व अरिहन्त, सिद्ध, साधु तथा केवली कथित धर्म से अभिन्न स्वरूप वाला है।

श्री अरिहतादि चारो की शरणगमन मुक्ति का आनन्दप्रद कारण है। मुक्ति स्वय स्वरूपलाभरूप है। स्वरूप का बोध अरिहतादि चारो के अवलम्बन से होता है। अरिहतादि चार

का अवलम्बन स्वरूप के बोध का कारण है। आत्मा मे आत्मा से आत्मा को जानने का साधन अरिहतादि चारो का शरण-स्मरण है। इन चारो का स्मरण ही तत्त्व से आत्म-स्वरूप का स्मरण है। जिसको यह बोध हो गया हो कि आत्मा का स्वरूप निश्चय रूप से परमात्मा तुल्य है उसके लिए परमात्म-स्मरण ही वास्तविक शरणागमन है।

आत्मतत्त्व का स्मरण

आत्मतत्त्व का स्मरण विशुद्ध अन्त करण मे होता है। अन्त करण की विशुद्धि दुष्कृतगर्हा एव सुकृतानुमोदन से होती है। दुष्कृत परपीडा रूप है, उनकी तात्त्विक गर्हा तब होती है जब कि परपीडा से उपार्जित पापकर्म को परोपकार द्वारा दूर करने का वीर्योल्लास जाग्रत होता है। परार्थकरण का वीर्योल्लास परपीडाकृतपाप की सच्ची गर्हा के परिणाम स्वरूप होना है। दुष्कृतगर्हा मे परार्थकरण की वृत्ति निहित है। सुकृतानुमोदन मे परार्थकरण का हार्दिक अनुमोदन होता है। चतु शरणागमन मे परार्थकरणस्वभाव वाले आत्मतत्त्व का आश्रय है।

आत्मतत्त्व स्वय ही परार्थकरण एव परपीडा का परिहार स्वरूप है। आत्मा के मूल स्वभाव को प्राप्त करने हेतु ही परपीडा का ग्रहण एव परोपकार गुण का अनुमोदन होता है।

शुद्ध स्वरूप को प्राप्त अरिहतादि चार सर्वथा परोपकार करने के लिए तत्पर है। अत उस स्वरूप की शरण स्वीकार करने योग्य, आदर एव उपासना के योग्य होती है। शुद्ध आत्म-तत्त्व सदैव स्वय के स्वभाव से ही शुद्धीकरण का कार्य करता है। अत वही पुन पुन स्मरणीय, आदरणीय, ज्ञेय, श्रद्धेय एव सर्वभावेन शरण्य है, शरण लेने योग्य है। जब तक स्वकृत

दुष्कृत की गर्हा नही होती एव छोटा भी दुष्कृत अनिन्दित रहता है, तव तक यह समझना चाहिए कि स्वपक्षपात रूपी राग-दोप का विकार विद्यमान है। निन्दा के स्थान पर अनुमोदना होने से ही वह मिथ्या है अत जो वास्तविक अनुमोदना का स्थान है उसकी अनुमोदना भी सच्ची नही होती। परकृत अल्प भी सुकृत का अनुमोदन जव तक अवशिष्ट रहता है तव तक अनुमोदना के स्थान पर अनुमोदना के वदले उपेक्षा विद्यमान रहती है तथा वह उपेक्षा भी एक प्रकार की गर्हा ही होती है। सुकृत की गर्हा तथा दुष्कृत का अनुमोदन जव तक आंशिक रूप से भी विद्यमान रहता है तव तक सच्ची शरण प्राप्त नही होती। दुष्कृत का अनुमोदन राग रूप है तथा सुकृत की निन्दा दोप रूप है। उसके मूल मे मोह या अज्ञान या मिथ्याज्ञान निहित है। इस मिथ्याज्ञान रूपी मोहनीय कर्म की सत्ता मे अरिहतादि का शुद्ध आत्म-स्वरूप पहचाना नही जाता क्योकि वह राग-दोप रहित है।

वीतराग अवस्था की सूझ-बूझ

राग-द्वेप रहित शुद्ध स्वरूप की सच्ची पहचान होने हेतु दुष्कृत गर्हा तथा सुकृतानुमोदन सर्वांश शुद्ध होने चाहिएँ। ऐसा होने पर ही रागद्वेप रहित अवस्थावान की सच्ची शरणागति प्राप्त हो सकती है तथा यह शरणागति प्राप्त हो तो ही भव-चक्र का अन्त आ सकता है। भवचक्र का अन्त लाने हेतु रागद्वेप रहित वीतराग अवस्था की अन्त करण मे सूझ-वूझ होनी चाहिए। सूझ का अर्थ है शोध अर्थात् जिज्ञासा तथा वूझ अर्थात् ज्ञान। वीतराग अवस्था की सूझ-वूझ दुष्कृतगर्हा तथा सुकृतानुमोदन की अपेक्षा रखती है। वीतराग अवस्था का माहात्म्य पहिचानने हेतु हृदय की भूमिका उसके योग्य होनी चाहिए।

यह योग्यता गर्हणीय-निन्दनीय की निन्दा तथा अनुमोदनीय की अनुमोदना के परिणाम से प्रकट होती है। दुष्कृत मात्र की निन्दा होनी चाहिए तथा सुकृत मात्र की अनुमोदना होनी चाहिए। इन दोनो के होने पर ही राग-द्वेप की तीव्रता घट जाती है। राग का अनुराग नही होना तथा द्वेप के प्रति द्वेप की वृत्ति होना यह राग-द्वेप की तीव्रता का अभाव है। दुष्कृत गर्हा तथा सुकृतानुमोदन की विद्यमानता मे उसकी सिद्धि होती है। इससे वीतरागिता की शरण-गमन वृत्ति जागती है क्योकि वीतरागिता ही श्रद्धेय, ध्येय तथा शरण्य है। पुन वीतरागिता अचिन्त्य शक्ति युक्त है, यह अनुभव होता है। रागद्वेपरहित वीतराग अवस्था अचिन्त्यशक्ति-युक्त है। वह उससे विमुख रहने वाले का निग्रह तथा उसके सम्मुख होने वाले पर अनुग्रह करता है।

लोकालोक प्रकाशक केवलज्ञान तथा केवलदर्शन जो आत्मा का सहज स्वरूप है, उस वीतराग अवस्था मे ही प्रकाशित उद्भासित होता है, अन्य अवस्था मे विद्यमान होने पर भी वह अप्रकट रहता है। केवलज्ञान—केवलदर्शन द्वारा लोकालोक का भाव हस्तामलकवत् प्रतिभासित होता है। वह सभी द्रव्यो के त्रिकालवर्ती सभी पर्यायो का ग्रहण करता है। समय-समय पर ज्ञान से सभी को जानता है तथा दर्शन द्वारा सभी को देखता है।

वीतरागिता की शरण मे रहने वाले को उसके ज्ञानदर्शन का लाभ मिलता है। इस ज्ञानदर्शन से प्रतिभासित सभी पदार्थो के सभी पर्यायो आदि की क्रमवद्धता निश्चित होती है जिससे जगत मे वने हुए, वन रहे तथा भविष्य मे वनने वाले अच्छे तथा बुरे कार्यों मे रागद्वेप तथा हर्ष—शोक की कल्पनाएँ नष्ट होती है।

शरण गमन द्वारा चित्त का समत्व

समग्र विश्वतन्त्र प्रभु के ज्ञान मे दिखाई देता है तथा तदनुरूप प्रवर्तित होता है जिससे प्रभु के अधीन रहने वाले के लिए विश्व की पराधीनता मिट जाती है तथा ऐसी प्रतीति होती है कि प्रभु ससाराधीन नही है, पर प्रभुज्ञान के अधीन ससार है तथा उससे चित्त का समत्व अखण्ड रूप से प्रकाशित रहता है ।

समत्व प्रकाशित होने से आत्मा अखण्ड सवर भाव मे रहती है, नवागन्तुक कर्म रुक जाते है तथा पुराने कर्म मुक्त हो जाते है जिससे आत्मा कर्मरहित होकर अव्यावाध सुख की भोक्ता होती है। अरिहतादि चार की शरण का यह अचिन्त्य प्रभाव है ।

अरिहत एव सिद्ध का वीतराग स्वरूप है, साधु का निर्ग्रन्थ स्वरूप है तथा केवलि-कथित धर्म का स्वरूप दयामय है। धर्म ध्रुव है, नित्य है, अनन्त तथा सनातन है । उसका प्रधान लक्षण दया है । दया मे स्वय के दुख के द्वेप जितना ही द्वेष दूसरो के दुखो के प्रति जाग्रत रहता है । स्वय के सुख की इच्छा जितनी ही इच्छा दूसरो के सुखो के प्रति भी उत्पन्न होती है । यह इच्छा रागात्मक होते हुए भी परिणाम मे राग को निर्मूल करने वाली होती है । दया मे दूसरो के दुखो के प्रति स्वय के दुख जितना ही द्वेप है फिर भी वह द्वेप, द्वेप-वृत्ति को अन्त मे निर्मूल करता है । जैसे काटे से ही कांटा निकलता है तथा अग्नि से अग्नि शमित होती है तथा विष से विष नप्ट होता है, इस न्याय के अनुसार रागद्वेप की वृत्ति-रूपी कांटे को निकालने हेतु सर्व जीवो के सुख का राग तथा सर्व जीवो के दुख का द्वेप अन्य कांटे का काम करता है ।

अप्रशस्त कोटि के रागद्वेष रूपी विप को शमित करने हेतु दूमरे विप का काम करता है। स्वय के मुखविपयक राग तथा दु खविषयक द्वेप रूपी आर्त्तध्यान की अग्नि को बुझाने हेतु सभी जीवो के मुख की अभिलापा रूपी राग तथा मभी दु.खी जीवो के दु खो के प्रति द्वेप धर्मध्यान रूपी अग्नि की आवश्यकता की पूर्ति करता है।

दया धर्म वृक्ष का मूल एवं फल

दया लक्षण धर्म अप्रशस्त रागद्वेप का शल्य दूर करने मे साधन रूप बन, जीवो को मदा मर्वदा के लिए रागद्वेपरहित वीतराग अवस्था की प्राप्ति करवाता है। वीतरागावस्था मर्वज्ञता तथा सर्वदर्शिता को प्रदान करने वाली होने से दया-प्रधान धर्म, मर्वज्ञता तथा सर्वदर्शिता को प्रदान करने वाली भी होती है। दया-प्रधान केवलि-धर्म को जो कोई त्रिकरण-योग मे यावज्जीवन प्रतिज्ञापूर्वक साधित करने वाले है वे माधु निर्ग्रंथ कहलाते है। रागद्वेष की गाँठ से बहुत अधिक मुक्त होने से तथा शेप अश से स्वल्पकाल मे ही अवश्य छूटने वाले होने मे वे भी शरण्य है।

निर्ग्रंथ अवस्था वीतराग अवस्था को अवश्य लाने वाली होने से प्रच्छन्न वीतरागिता ही है। दयाप्रधान धर्म का प्रथम फल निर्ग्रंथता है तथा अन्तिम फल वीतरागिता है। क्षयोपशम भाव की दया का परिपूर्ण पालन ही निर्ग्रंथता है तथा क्षायिकभाव की दया का प्रकटीकरण ही वीतरागिता है।

निर्ग्रंथता (माधु तथा धर्म) प्रयत्न-साध्य दया का स्वरूप है तथा वीतरागिता सहज-साध्य दयामयता है। फिर धर्म हो या धर्ममाधक माधु अथवा माधुपन के फलस्वरूप अरिहत या मिद्ध परमात्मा हो पर इन मब मे दया ही सर्वोपरि है।

धर्मवृक्ष के मूल मे दया है। अत. धर्मवृक्ष के फल मे भी दया ही प्रकट होती है। साधु दया के भण्डार है तो अरिहत तथा सिद्ध भी दया के निधान है। दयावृत्ति तथा दया की प्रकृति मे तारतम्य भले ही हो पर सभी का आधार एक दया ही है, उसके अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नही।

कर्मक्षय का असाधारण कारण

जीव का रूपान्तर करने वाले रसायन के स्थान पर एक दया है इसीलिए तीर्थंकरों ने दया को ही प्रशसित किया है। धर्मतत्त्व का पालन, पोषण तथा सवर्द्धन करने वाली मात्र दया ही है तथा वह दु खी एव पापी प्राणियो के दु.ख तथा पाप का नाश करने वाली वृत्ति तथा प्रवृत्ति रूप है तथा क्षायिकभाव मे सहज स्वभाव रुप है। वह स्वभाव दु.ख रूपी दावानल को एक क्षणमात्र में शान्त करने हेतु पुष्करावर्त्त नाम के वादलो के समान है। पुष्करावर्त्त मेघ की धारा जैसे भयंकर दावानल को भी शान्त कर देती है वैसे ही जिनको आत्मा का सहज स्वभाव प्रकट हुआ है उनके ध्यान के प्रभाव से दु ख दावानल मे जलते समारी जीवो का दु.खदाह एक क्षण भर में शमित हो जाता हैं।

शुद्ध स्वरुप को प्राप्त अरिहतादि आत्माओ का ध्यान उनके पूजन, स्तवन तथा आज्ञापालन आदि द्वारा होता है। शुद्ध स्वरूप को प्राप्त आत्माओ का ध्यान ही परमात्मा का ध्यान है तथा यह निज शुद्धात्मा का ध्यान है। ध्यान से ध्याता ध्येय के साथ एकता का अनुभव करता है वही समापत्ति है तथा वही कर्मक्षय का एक असाधारण कारण है। निज शुद्ध आत्मा द्रव्य, गुण तथा पर्याय मे अरिहत तथा सिद्ध के समान है। अत. अरिहंत एवं सिद्ध परमात्मा का ध्यान द्रव्य, गुण तथा पर्याय

से स्वय की शुद्ध आत्मा के ध्यान का कारण बनता है। 'कारण से कार्य उत्पन्न होता है' वाले न्याय से अरिहंत तथा सिद्ध परमात्मा के ध्यान से सकल कर्म का क्षय होने से स्वय का शुद्ध स्वरूप प्रकट होता है।

कर्मक्षय का असाधारण कारण शुद्ध स्वरूप का ध्यान है। कहा गया है कि --

मोक्ष कर्मक्षयादेव, स चात्मज्ञानतो भवेत्।
ध्यानसाध्यं मत तच्च, तद् ध्यानं हितमात्मन. ॥

सकल कर्म के क्षय से मोक्ष उत्पन्न होता है तथा सकल कर्म का क्षय आत्मज्ञान से होता है। आत्मज्ञान परमात्मा के ध्यान से प्रकट होता है जिससे स्वय के शुद्ध आत्म-स्वरूप का लाभ रूप मोक्ष प्राप्त करने हेतु परमात्मा के ध्यान मे लीन होना चाहिए क्योकि वह ध्यान ही आत्मा को मोक्ष सुख का असाधारण कारण होने से अत्यन्त हितकारी है।

स्वरूप की अनुभूति

अरिहंतादि चारो की शरण शुद्ध आत्म-स्वरूप का स्मरण कराने वाली होने से तथा उनके ध्यान मे ही तल्लीन कराने वाली होने से तत्त्वत. शुद्ध आत्म-स्वरूप की ही शरण है। शुद्ध आत्म-स्वरूप की शरण ही परम समाधि को प्रदान करने वाली होने से परम उपादेय है। इसकी पात्रता दुष्कृत की गर्हा तथा सुकृतानुमोदन से प्राप्त होती है। अतः दुष्कृतगर्हा तथा सुकृतानुमोदना भी उपादेय है।

दुष्कृत-गर्हा तथा सुकृतानुमोदना सहित अरिहंतादि चार की शरण भव्यत्व परिपाक के उपाय के रूप मे शास्त्र मे

वर्णित है, यह युक्ति तथा अनुभव से भी कहा गया है। दुष्कृत गर्हा तथा सुकृतानुमोदन पदार्थवृत्ति एव कृतज्ञताभाव की उत्तेजक होने से अन्त.करण की शुद्धि करती है, यह युक्ति है तथा शुद्ध अन्त करण मे ही परमात्म स्वरूप का प्रतिबिम्ब पड़ सकता है यह सर्वयोगी पुरुषो का भी अनुभव है।

समुद्र अथवा सरोवर जव निस्तरग होता है तभी उसमे आकाशादि का प्रतिविम्व पड सकता है उसी तरह अन्त करण रूपी समुद्र अथवा सरोवर जबसकल्प-विकल्प रूपी तरगो से रहित बनता है तभी उसमे अरिहतादि चारो का तथा शुद्धात्म का प्रतिबिम्ब पडता है।

अन्त करण को निस्तरग तथा निर्विकल्प बनाने वाली दुष्कृत-गर्हा तथा सुकृतानुमोदन का शुभ परिणाम है एव उसमें शुद्धात्मा को प्रतिबिम्वित करने वाले अरिहतादि चारो का स्मरण तथा शरण है।

स्मरण ध्यानादि से सभूत है तथा शरणगमन आज्ञा-पालन के अध्यवसाय से होता है। आज्ञा-पालन का अध्यवसाय निर्विकल्प चिन्मात्र समाधि को देने वाला है। निर्विकल्प चिन्मात्र समाधि का अर्थ है शुद्धात्मा के साथ एकता की अनुभूति। इसे स्वानुभूति कहते है।

इस प्रकार परम्परा से दुष्कृत-गर्हा तथा सुकृतानुमोदन तथा साक्षात् श्री अरिहत आदि चार की शरणगमन निर्विकल्प चिन्मात्र समाधि-स्वरूपानुभूति का कारण बनता है। अत. शास्त्र इन तीनो को जीव का तथाभव्यत्व अर्थात् मुक्ति गमन योग्यत्व परिपक्व करने वाल कहते हैं यह यथार्थ है।

दुर्लभ मानव जीवन मे इन तीनो साधनो का भव्यत्व-परिपाक के उपाय के रूप मे आश्रय लेना ही प्रत्येक मुमुक्षु आत्मा का परम कर्त्तव्य है।

***

महामंत्र की अनुप्रेक्षा

द्वितीय किरण

अनुक्रम

अनुप्रेक्षा

(द्वितीय किरण)

प्रभु आज्ञा का स्वरूप

आस्रवो भवहेतु. स्यात्, संवरो मोक्षकारणम् ।
इतीयमार्हतीदृष्टिरन्यदस्या: प्रपंचनम् ॥

अर्थ—आस्रव सर्वथा हेय है तथा सवर उपादेय है। आस्रव ससार का कारण है तो सवर मोक्ष हेतु। श्री अरिहन्त परमात्मा की आज्ञा का सक्षेप मे यही परम रहस्य है। अन्य सब कुछ इसी का विस्तार मात्र है।

मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कपाय तथा योग ये पांच आस्रव है। सम्यक्त्व, विरति, अप्रमाद, अकपाय तथा अयोग ये पांच संवर हैं।

श्री पचमगल महाश्रुतस्कन्ध मे नमस्कार की पांच वस्तुये है, श्री अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा साधु। इस पचक मे आस्रव का अभाव है तथा सवर की पूर्णता है। इस पंचक को नमस्कार करने का अर्थ सवर को ही नमस्कार करना है। सवर का अनुगमन प्रभु की आज्ञा है। फिर जब यह पचक आस्रव से रहित है तो इसको नमन करने का तात्पर्य आस्रव त्याग को ही नमस्कार है क्योकि आस्रव का त्याग प्रभुकी आज्ञा है। इसीलिए इस पचक के नमस्कार मे सवर का सम्मान है तथा आस्रव की निन्दा है। परमेष्ठि को नमस्कार करने से सुकृत की अनुमोदना तथा दुष्कृत की निन्दा होती है। सुकृत की अनुमोदना से शुभ का, कुशलता का अनुबन्ध होता है

एवं अशुभ तथा अकुशलता के अनुवन्ध का विच्छेद होता है। परमेष्ठि नमस्कार मे परमात्मा की आज्ञा का वहुमान होता है इससे आज्ञा पालन का अध्यवसाय तीव्र होता है तथा आज्ञा की विराधना का अध्यवसाय समाप्त होता है।

आज्ञा का साम्राज्य

परमेष्ठि नमस्कार प्रभु की आज्ञा के साथ अनुकूल सम्वन्ध स्थापित करवाता है। प्रभु की आज्ञा का साम्राज्य तीनो भुवनो मे प्रवर्तित है। समस्त विश्व का प्रवर्तन आज्ञा के आधीन है। आज्ञा की अवहेलना करने वाला दण्ड का पात्र वनता है तथा प्रभु की आज्ञा का आराधक उन्नतिशील वनता है। आज्ञा पालक निर्भय होता है। आज्ञा एक दीप है, आज्ञा एक त्राण है, आज्ञा शरण है आज्ञा ही गति है तथा आज्ञा ही दुर्गति मे पडे हुए मनुष्य का आलम्वन है। परमेष्ठि नमस्कार मे आज्ञा-आज्ञापालक तथा आज्ञा प्रदाता को नमस्कार होने से यह भव्य जीवो को दीप सदृश प्रकाशित करता है अथवा भवसमुद्र मे द्वीप की तरह आधार प्रदान करता है। परमेष्ठि नमस्कार अनर्थ तथा अनिष्ट का घात करता है। यह भवभय से पीडित को शरण प्रदान करता है, दु ख दारिद्रय से वचने का मार्ग वताता है और भवकूप मे पडते हुए जीवो का आलम्वन स्वरूप वनता है प्रभु की आज्ञा मे जितने गुण हैं उन सवको प्राप्त करने का अधिकारी परमेष्ठि को नमस्कार करने वाला है। इसीलिए परमेष्ठि नमस्कार ही सार पोटली है, रत्न की पेटी है, ढंका हुआ खजाना है, धर्मरूपी स्वर्ण की छाव है तथा है मुक्ति के मुसाफिर भव्य आत्मा के लिए देवाधिदेव का परम प्रसाद। परमेष्ठि नमस्कार का आराधक आज्ञा का आराधक

होता है और आज्ञा का आराधक ही शिवसुख को प्राप्त करता है।

उत्कृष्ट अनुमोदना एवं उत्कृष्ट गर्हा

नमस्कार की चूलिका सम्यक्त्वरूपी सवर को कहते हैं। साधुओ को किया गया नमस्कार सर्वविरति संवर को प्रकट करता है, आचार्यों तथा उपाध्यायो को किया गया नमस्कार अप्रमाद सवर को व्यक्त करता है, वैसे ही अरिहन्त तथा सिद्धो को किया गया नमस्कार क्रमश अकषाय सवर एव मुख्यरूप से अयोग सवर को व्यक्त करता है। ये पाँचो नमस्कार पाँच प्रकार के सवरो को पुष्ट करते हैं। अतः परम मगलस्वरूप है। वे पाँचो प्रकार के आस्रवो के कट्टर विरोधी होने से उन्हें समूल नष्ट करते है। परमेष्ठि नमस्कार से दुष्कृतो की सर्वोत्कृष्ट गर्हा होती है तथा सुकृत मात्र की सर्वोत्कृष्ट अनुमोदना होती है। दुष्कृतमात्र को त्यक्त कर सुकृतमात्र के सेवन करने की प्रभु की आज्ञा है। इसलिए पचमगल की नित्य आराधना करने वाला प्रभु की आज्ञा का परम आराधक होता है। प्रभु की आज्ञा छह जीवनिकायो की हितसम्पादिका है। अत. पचमगल का सेवन करने वाला छओ जीवनिकायो का हित-चिन्तक होता है। समस्त जीवराशि पर हित का परिणाम ही मित्रता है। अत. मैत्रीभाव धारण करने वाला परमात्मा की आज्ञा का आराधक होता है।

नमस्कार से माध्यस्थ्य परिणति

नमस्कार इसलिए मन्त्र है कि वह छह जीवनिकायो के साथ गुप्त भाषण करता है, उनके हित की मन्त्रणा करता है तथा उनके द्वारा पुरुषार्थ को आमन्त्रण देता है। पचमंगल

परमात्मा की आज्ञा का मूर्तिमन्त-स्वरूप है। परमात्मा की आज्ञा का स्वरूप है--निन्दित तथा त्याज्य का त्याग, उपादेय का उपादन तथा उपेक्षणीय की उपेक्षा। मिथ्यात्व आदि त्याज्य है, सम्यक्त्व आदि उपादेय तथा अनात्मतत्त्व उपेक्षणीय है। परमेष्ठि नमस्कार से मिथ्यात्व आदि पापों का नाश होता है, सम्यक्त्व आदि गुणो का स्वीकार होता है तथा अजीवतत्त्व की उपेक्षा होती है। उपेक्षा का अर्थ है माध्यस्थ्य परिणति। अजीवतत्त्व न तो राग के योग्य है तथा न द्वेप योग्य है। ऐसी परिणति (तटस्थ मनोवृत्ति) ही माध्यस्थ्य परिणति है। जीवमात्र के प्रति मैत्री, अजीवमात्र के प्रति माध्यस्थ्य तथा जीव की शुभाशुभ अवस्थाओ के प्रति क्रमशः प्रमोद तथा कारुण्य आदि भाव परमेष्ठि नमस्कार द्वारा सम्पुष्ट होते है।

नमस्कार मर्मस्पर्शी

आत्मज्ञान प्राप्त करने का मुख्य साधन विचार है। यह विचार दो रूप मे प्रवर्तित होता है। एक वैराग्य के रूप मे व दूसरा मैत्री के रूप मे अर्थात् जीवमात्र के प्रति मैत्रीरूप तथा जडमात्र मात्र के प्रति वैराग्य रूप। नमस्कार दोनो प्रकार के विचारो को प्रेरित करता है। परमार्थभूत आत्मा सत्पुरुषो मे होती है। परमेष्ठि नमस्कार सत्पुरुपो की परमार्थभूत आत्मा को नमस्कार है, इसीलिए परमेष्ठि नमस्कार समस्त शास्त्रो का मर्मरूप है। शास्त्र तो मार्ग बनाते हैं। उसका मर्म सत्पुरुषो के अन्तर मे है तथा परमेष्ठि नमस्कार उस मर्म को छूता है।

ज्ञान चेतना का आदर

जगत मे यदि कोई सर्वश्रेष्ठ वस्तु है तो वह शुद्ध चैतन्य है। परमेष्ठि नमस्कार में उसका वहुमान होता है। शुद्ध चैतन्य स्वरूप का वहुमान स्वय के शुद्ध पद को प्रकट करता है।

स्वयं की शुद्ध चेतना ज्ञान स्वरूप है। परमेष्ठि नमस्कार से कर्मचेतना की तथा कर्मफल की उपेक्षा होती है तथा ज्ञान-चेतना का आदर होता है। ज्ञानचेतना राग आदि विकारों से रहित होती है, अत वीतराग स्वरूप है तथा ज्ञान सहित है जिससे सर्वज्ञ स्वरूप है। परमेष्ठि नमस्कार मे आत्मा का वीतराग स्वरूप तथा सर्वज्ञ स्वरूप पूजित होता है। नमस्कार का तात्त्विक अर्थ पूजा है। द्रव्य तथा भाव का सकोच ही पूजा है। द्रव्य सकोच का सम्बन्ध वाणी तथा काया से है तथा भाव संकोच मन से सम्बन्धित है। इस प्रकार मन, वाणी तथा काया से वीतराग स्वरूप तथा सर्वज्ञ स्वरूप ज्ञानचेतना का आदर तथा उसको धारण करने वाले सत्पुरुषो की सतत पूजा ही नमस्कार का तात्पर्यार्थ है। वीतरागिता की पूजा ही प्रभु की आज्ञा है। वीतरागिता ही सर्वज्ञता का अवंध्यकारण होती है। भक्ति की प्रयोजना तथा सेव्यता (सेव्यभाव) की निरन्तरता वीतराग आदि गुणो से युक्त होने के लक्षण है। परमेष्ठि नमस्कार मे वही वस्तु पूजित होती है। अत विपरीत वस्तु असेव्य होने से अपूज्य होती है। नमस्कार से पूज्य की पूजा तथा अपूज्य की अपूजा साधित होती है। इसीलिए यह महामन्त्र है। सत्पुरुषो के लिए नमस्कार सेव्य है आराध्य है तथा मान्य है।

श्रवण मनन निदिध्यासन

आज्ञा पदार्थ आप्त वचन है। आप्त ही यथार्थ वक्ता होता है। यथार्थ वक्ता का यथार्थ वचन ही श्रवण पदार्थ है। मनन पदार्थ युक्ति को ढूंढता है। आस्रव हेय होता है क्योकि वह स्व पर पीडाकारक होता है। सवर उपादेय होता है क्योकि वह स्व पर हितकारक होता है। निदिध्यासन पदार्थ ऐदपर्य बताता है। आज्ञा का ऐदपर्य आत्मा है। आस्रव की हेयता तथा संवर की उपादेयता का ज्ञान जिसको होता है वही आत्मा आज्ञा-

वरूप है। प्रवृत्ति निवृत्ति रूप आज्ञा हेयोपादेयार्थक होती है। था यह केवल आज्ञा का व्यावहारिक अर्थ है। आज्ञा का श्चयिक अर्थ स्वरूपरमणता है। स्वरूपरमणता ही परमार्थ-रण भूत है। नमस्कार का व्यावहारिक अर्थ आस्रव त्याग था सवरसेवन का बहुमान है। नमस्कार का पारमार्थिक अर्थ ास्रव का त्याग करने वाली तथा सवर का सेवन करने वाली वशुद्ध आत्मा है। विशुद्ध आत्मा ज्ञायक रूप है। स्वभाववान ात्मा मे परिणमन ही नमस्कार का ऐदपर्यार्थ है तथा वही ात्म साक्षात्कार का अनन्तर कारण है

आत्मा वा रे द्रष्टव्यो, श्रोतव्यो, मंतव्यो, निदिध्यासितव्यो।

श्रवण, मनन, निदिध्यासन से आत्मा का साक्षात्कार होता है। साक्षात्कार ही मुख्य प्रयोजन है। उसका साधन निदिध्यासन, निदिध्यासन का साधन मनन तथा मनन का साधन श्रवण है। श्रवण का अधिकारी मुमुक्षु होता है। मुमुक्षु के लक्षण शम दम-तितिक्षा तथा श्रद्धा-समाधान तथा उपरति है। उसका मूल विराग है तथा विराग का मूल नित्य अनित्य आदि का विवेक तथा विचार है।

अमनस्कता का मन्त्र

'नमो' मन्त्र सर्वप्राणो को उत्क्रमण करवाता है। 'नमो' मन्त्र का उच्चारण मात्र करने से ही प्राणो का उर्ध्वीकरण-उत्क्रमण होता है। दूसरे अर्थ मे 'नमो' मन्त्र सर्वप्राणो को परमात्म-तत्त्व मे परिणमन करवाता है प्राणो को मन के ऊपर ले जाने मे 'नमो' न्त्रम सहायता करता है। अमनस्कत्व और उन्मन भाव की अवस्था 'नमो' मन्त्र के पुन. पुन स्मरण से उत्पन्न होती है। कहा जाता है विप्रतीप मनोनम। यह 'नमो' मनकी विशुद्ध दशा मे गतिप्रद मन्त्र है। मनसातीत

अवस्था 'नमो' मन्त्र से साधक को सहज ही प्राप्त होती है। 'नमो' नमन-परिणमन एकार्थक हैं। जिससे आत्मा का शुद्ध स्वरूप मे परिणमन होता है। वह 'नमो' मन्त्र है। अत. यह परम रहस्यमय माना जाता है।

सन्मान का सर्वोत्कृष्ट दान

दान का आनन्द जीवन का सर्वश्रेष्ठ आनन्द है। यह 'नमो' सर्वश्रेष्ठ पुरुषो को दिया जाने वाला सर्वश्रेष्ठ दान है। सभी दानो मे श्रेष्ठ दान सन्मान का दान है। दान के सर्वश्रेष्ठ पात्र श्री पच परमेष्ठि भगवान् हैं। जो चित्त के शुभ भाव से पच परमेष्ठि भगवान् को 'नमो' मन्त्र से निरन्तर सन्मान का दान करते हैं वे मानव जन्म प्राप्त कर अश मात्र भी करने योग्य कार्य करके कृतार्थता का अनुभव करते हैं। परमेष्ठि नमस्कार मे कृतज्ञता का भाव रहता है। दुर्गति मे पडते हुए जीवो को श्री परमेष्ठि भगवान् नमस्कार मात्र से परम आलम्बन प्रदान करते हैं तथा अपने विशुद्ध जीवन से परम आदर्श तथा भवसागर तरणार्थ नौका सदृश परमतीर्थ को स्थापित कर लाखो, करोडो तथा असख्य जीवो को रत्नत्रय (त्रिरत्न) -- का मुक्तहस्त से दान करते है।

ऐसे परमदाता को उनके योग्य सन्मान देना ही सभी कृतज्ञ जीवो का परम कर्त्तव्य है। कृतज्ञता ही पात्रता समायोजन एव योग्यता विकसित करने का प्रथम सोपान है। जो उपकारी जनो के प्रति निरन्तर कृतज्ञता का भाव प्रदर्शित करते हैं वे ही भवारण्य मे सुरक्षित रहते है। वे जहाँ भी जाते हैं वहां यह कृतज्ञता का गुण उनका उत्तम आत्माओ से समागम करवाकर उनके स्नेह का भाजन बनवाता है। कहा है—"क्षणमपि सज्जन संगतिरेका भवति भवार्णव तरणे नौका" (अर्थात् क्षणमात्र भी

की हुई सज्जनो की सगति ससार समुद्र को पार करने हेतु नौका सदृश होती है) सत्पुरुषो की सगति करने वाले को योग्य शुभ पुण्य का अर्जन कृतज्ञताभाव के कारण अवश्य होता है। इस जगत मे अर्थ का दान करने वाले अभी भी मिल सकते है पर हृदय से सन्मान का दान प्रदान करने वाले दुर्लभ होते है। जिनका चित्त नमस्कार मे नही लगता है उनको समझना चाहिये कि योग्य को योग्यदान देने की उदारता उनके हृदय मे अभी प्रकट नही हुई है। कृपणता का नाश कृतज्ञता से होता है तथा कृतज्ञता का पालन सर्वश्रेष्ठ दातारो को सन्मान का दान देने से होता है।

सर्वोत्कृष्ट शरणागति

श्री नमस्कार महामन्त्र ही सर्वोत्कृष्ट गर्हा, सर्वोत्कृष्ट अनुमोदना तथा सर्वोत्कृष्ट शरणागति का मन्त्र है। सभी पापो को सर्वथा नष्ट करने का प्रणिधान श्री नमस्कार महामन्त्र मे है जो सर्वोत्कृष्ट गर्हा का परिणाम सूचित करता है। सर्व-मगलो मे प्रधान तथा प्रथम मगल नमस्कार है जो सर्वोत्कृष्ट शरणागति का तथा सर्वोत्कृष्ट अनुमोदना का परिणाम है। 'नमो' पद सर्वोत्कृष्ट शरणागति का सूचक है क्योकि उसमे एक तरफ हाथ, सिर आदि सर्वाङ्ग का समर्पण है एवं दूसरी तरफ उसके द्वारा आत्मा के सर्व प्रदेशो का समर्पण है। तीन करण, तीन योग, सात धातु, दस प्राण, सर्वरोम तथा सर्वरोम तथा प्रदेशो से होती शरणागति श्री नमस्कार महामन्त्र का सर्वोत्कृष्ट वाच्य है। भव्यत्व परिपाक की समग्र सामग्री एक साथ सगृहीत हो नमस्कार महामन्त्र मे समायोजित हो जाती है।

कल्याण का मार्ग

श्री नमस्कार महामन्त्र के उपकार अनन्त है तथा उसने मुक्तिगमन हेतु अनन्त-आत्माओ को परमावलम्बन प्रदान किया है। श्री नमस्कार महामन्त्र का आधार लेकर सभी तीर्थंकरो, गणधरो, श्रुतधरो एव दूसरे ज्ञानी महापुरुषो ने परमपद प्राप्त किया है। यह हमारा कितना सौभाग्य है कि सभी महापुरुषो को आधार प्रदान करने वाला ऐसा महामन्त्र हमे अभी मिला है। इस प्रकार श्री नमस्कार महामन्त्र का गौरव हृदय मे धारण कर उसका आलम्बन लेने वाला दुर्गति मे पडती हुई अपनी आत्मा को बचा सकता है तथा सद्‌गति को परम सुलभ बना सकता है। आलम्बन के आदर से उत्पन्न पुण्य ही विघ्नो का क्षय करता है एव पतनोन्मुख अपनी आत्मा को ठीक समय उवार लेता है। नीचे गिरते हुए को बचाने वाले एवं ऊँचे चढने मे आलम्बनभूत होने वाली प्रत्येक वस्तु को परम आदर से देखने की हमे आदत डालनी चाहिए। इस आदत का अभ्यास ही जीव को आत्मविकास मे आगे बढाने वाला होता है। श्री नवकारमन्त्र इस प्रकार कल्याण का मार्ग सिखाता है।

मन्त्र-चैतन्य की जागृति

श्री नमस्कार मन्त्र के उच्चारण के साथ ही प्राणो की गति उर्ध्व-उच्च होने लगती है एव सभी प्राण (पाँच इन्द्रिय—मन वचन काया श्वोसोच्छ्‌वास आयु) एक साथ परमात्मा से सम्बद्ध हो जाते हैं। मन्त्र के उच्चारण के साथ ही मन एव प्राण उर्ध्व गति को धारण करते है, कर्म का क्षयोपशम होता है, कर्म की अशुभ प्रकृति का स्थिति-रस घट जाता है एवं शुभ प्रकृति का स्थिति-रम बढ जाता है। सत् क्षयोपशम होने से सद्‌बुद्धि उत्पन्न होती है एव यह सद्‌बुद्धि गुरुतत्त्व का कार्य

करती है। सद्‌बुद्धि द्वारा तत्त्व की महिमा ज्ञात होती है जिससे अन्तर्मुखी वृत्ति बढने के साथ परमात्मतत्त्व की अनुभूति होने लगती है। इस प्रकार मन, मन्त्र, प्राण तथा देव, गुरु एव आत्मा की एकता साधित होती है। उसे ही मन्त्रशास्त्र मे मन्त्र चैतन्य का उद्‌भव होना कहा जाता है। कहा है कि--

मंत्रार्थं मंत्रचैतन्यं, यो न जानाति तत्त्वत॰
शत-लक्ष-प्रजप्तोऽपि, मंत्रसिद्धिं न ऋच्छति ॥

अर्थात् मन्त्र के अर्थ को एव मन्त्र चैतन्य को जो तत्त्वतः नही जानता है उसे कोटि जाप से भी मन्त्र सिद्धि नही होती है।

भाषावर्गणा से श्वासोच्छ्‌वासवर्गणा सूक्ष्म है एवं मनो वर्गणा उससे भी अधिक सूक्ष्म है। उससे भी अधि - सूक्ष्म कर्म वर्गणा है। उसके क्षय एव क्षयोपशम से अन्तर्मुखी वृत्ति तथा आत्मज्ञान होने लगता है। उसी का नाम मन्त्र चैतन्य की जागृति है। कहा है कि--

गुरुमंत्रदेवताऽऽत्ममन॰ पवनानामैक्यनिष्कलनादन्तरात्म-सवित्तिः।

अर्थात् मन, मन्त्र, तथा पवन का तथा देव, गुरु और आत्मा का पारस्परिक कथचिद् ऐक्य सम्बन्ध है यह जानने से अन्तरात्म भाव का सवेदन होता है।

शब्द ब्रह्म द्वारा परब्रह्म की उपासना

श्री नमस्कार मन्त्र ज्ञायक भाव को नमस्कार करवाना सिखाता है। ज्ञायक भाव आत्मा का स्वभाव है। राग-द्वेषादि भाव विभाव है। विभावोन्मुख आत्मा को स्वभावोन्मुख करना ही नमस्कार मन्त्र का कार्य है। अरिह वर्णमाला का एव शब्द ब्रह्म का सक्षिप्त स्वरूप है। शब्द ब्रह्म परब्रह्म का वाचक है

एवं परब्रह्म शुद्धज्ञान स्वरूप है क्योंकि उसमें विशुद्धज्ञान ही है एव उसके अतिरिक्त दूसरे कोई भाव समाविष्ट नही हैं। वही शुद्ध पर ब्रह्म-स्वरूप ही उपास्य है, पूज्य है एव आराध्य है। इसके अतिरिक्त दूसरा स्वरूप अनुपास्य, अपूज्य एवं असेव्य है, यह जैन-सिद्धान्त है। सेव्य भाव का अवच्छेदक वीतरागत्व आदि गुणवत्व है। वीतरागत्व सर्वज्ञत्व के साथ व्याप्त है। अत वीतराग एव सर्वज्ञ जैसे निर्दोषकेवलज्ञानस्वरूप की उपासना ही परमपद की प्राप्ति का बीज है।

कृतज्ञता एवं स्वतन्त्रता

'नमो' कृतज्ञता का मन्त्र है एव स्वतन्त्रता का भी। कृतज्ञता गुण व्यवहार धर्म का आधार स्तम्भ है एव स्वतन्त्रता गुण निश्चय धर्म का मूल है। आत्म-द्रव्य अनादि कर्म सम्बद्ध होते हुए भी कर्म द्रव्य एव आत्म द्रव्य कथचित् भिन्न है। आत्मा एवं कर्म का सयोग सम्वन्ध है तथा इसका अन्त वियोग मे होता है। कर्म सम्बन्ध का आदि भी है तथा अन्त भी। आत्म द्रव्य अनादि अनन्त है। आत्म द्रव्य की स्वतन्त्रता का अनुभव कर जगत को बताने वाले श्री तीर्थंकर भगवान् अनन्त उपकारी है। उनके उपकार को हृदय में धारण कर उनके प्रति नित्य आभार वृत्ति रख उस उपकार का वदला चुकाने में अपने असामर्थ्य को निरन्तर स्वीकार करना ही व्यवहार धर्म का मूल है और यही निश्चय धर्म प्राप्त करने की सच्ची योग्यता है। कृतज्ञता गुण के पालन द्वारा 'नमो' मन्त्र की उपासना स्वतन्त्रता की तरफ ले जाने वाली सिद्ध प्रक्रिया है इसलिए 'नमो' मन्त्र को सेतु से भी उपमित किया जा सकता है। श्री नमस्कार मन्त्र भवसागरतरण हेतु तथा मोक्षनगर पहुँचने हेतु सेतु का काम करता है, अर्थात् वह व्यक्त

से अव्यक्त मे ले जाता है। प्रकृति से पराङ्मुख बनाकर पुरुष के सन्मुख ले जाता है। अत वह दीप-द्वीप है, त्राण-शरण है, गति एव आधार है। 'नमो' मन्त्र दुष्कृत की गर्हा कराने वाला होने से क्रमश दीप, द्वीप एव त्राण है। सुकृतानुमोदन कारक होने से गति एव प्रतिष्ठा रूप है, सुकृत तथा दुष्कृत से परे विशुद्ध आत्मतत्त्व के अभिमुख ले जाने वाला होने से परम शरणागमनरूप भी है इस प्रकार नमो मन्त्र भव्य जीवो के लिए परम आलम्बन रूप एव परम आधार रूप बनकर भवदु.ख विच्छेद तथा शिवसुख की प्राप्ति करवाने मे सहायक होता है। दूसरे प्रकार से यो भी कहा जा सकता है कि नमो मन्त्र स्थूल मे सूक्ष्म की ओर जाने का मन्त्र है। सूक्ष्म से सूक्ष्मतर तथा सूक्ष्मतर मे सूक्ष्मतम की ओर जाने की प्रेरणा भी 'नमो' मन्त्र से ही मिलती है। अणु से अणु तथा महान् से महान् आत्मतत्त्व की प्राप्ति अर्थात् 'अणोरणीयाम्' और महतोमहीयान्' दोनो विशेषणो वाली परमपद सिद्धि 'नमो' मन्त्र से होती है।

शान्त रस का उत्पादक

नमो अरिहताण महामन्त्र है, शाश्वत है एव शात रस का पान करवाने वाला है। शात रस का अर्थ है रागद्वेष विनिर्मुक्त विशुद्ध ज्ञान व्यापार को नमस्कार। अरिहंमोहादि शत्रुओ का नाशक है अत त्राण स्वरूप है। 'अरिहं' शब्द शत्रु नाशक, पूज्यता का वाचक तथा शब्द ब्रह्म का सूचक होने से शात रसोत्पादक है। शातरस, समतारस, उपशम रस–ये सभी शब्द एकार्थक है। रागद्वेष एव सुख दु:ख के सवेदन से परे ज्ञान रस ही शम रस है, यही समता रस है एव शांत रस है। 'नमो अरिहताणम्' मन्त्र ज्ञान चेतना के प्रति भक्ति उत्पन्न कर उसमे जीव को तल्लीन बनाता है।

नमो मन्त्र अनाहत स्वरूप

'नमो' मत्र उच्चारण मे सरल, अर्थ से रक्षण करने वाला एव फल से ऊर्ध्वातिऊर्ध्व गति मे ले जाने वाला है, अत महामत्र है। उच्चारण करते ही यह सब प्राणो को ऊँचे ले जाता है और यह सर्वप्राणो को परमात्मा मे विलीन कर देता है वह शब्द से सरल, अर्थ से मागलिक एव गुण से सर्वोच्च है नम्रता सव गुणो मे परम गुण है। अपनी सत्ता को अणु रूप समझने वाला ही महान् से महान् तत्त्व के साथ सबधित हो हो सकता है। पूर्णता शून्यता का ही सर्जन है। 'नमो' मत्र मे शून्यता निहित है अत वह पूर्णता का कारण वनता है 'नमो' अनाहत स्वरूप है क्योकि वह भाव प्रधान है। ज्ञान अक्षरात्मक है एव भाव अनक्षर स्वरूप है। अत उसका आलेखन अनाहत के द्वारा ही सम्भव हो सकता है फि ज्ञानोपयोग की स्थिति अन्तर्मुहूर्त से अधिक नही है। भाव की स्थिति अव्याहत है। दीर्घकालीन होने के कारण उसका आलेखन अथवा आकलन शब्द द्वारा सम्भव नही। परमात्म केवल ज्ञान ग्राह्य नही किन्तु भाव ग्राह्य है। भाव स्वरूप तथ भक्ति स्वरूप होने से 'नमो' पद के द्वारा परम तत्त्व क अनुभूति हो सकती है। छद्मस्थ जीवो के लिए जहाँ ज्ञान क अन्त है वही भाव का प्रारम्भ है। पृथक्करण करने के कारा जहाँ ज्ञान द्वैत स्वरूप है वहाँ भाव एकीकरण करने के कारा अद्वैत स्वरूप है। इसीलिए परमात्मा के साथ अद्वैत भा नमस्कार से ही साधा जा सकता है।

रुचि अनुयायी वीर्य

नमस्कार-भाव प्रशसात्मक तो है ही साथ ही आदर, प्री एव बहुमान वाचक भी है। नमस्कार भाव से परमतत्त्व

प्रति अभिरुचि प्रकट होती है। जहाँ रुचि वही पराक्रम प्रवृत्त होता है। भाव द्वारा उत्पन्न रुचि मे ही सामर्थ्य है कि वह आत्मा की शक्ति एव वीर्य को परमात्म भाव की ओर मोड दे। भाव की उत्पत्ति ज्ञान से होती है पर ज्ञान स्वय भाव स्वरूप नही। भाव मे ज्ञान तो है ही पर उससे भाव के कुछ अधिक होने से ही वह पूज्य है। भाव शून्य ज्ञान का मूल्य कोडी भी नही। अल्पज्ञान से समन्वित शुद्ध भाव का मूल्य अगणित है। परमात्मा चिन्मय ज्ञानानन्दमय है, अत वह भाव ग्राह्य है। सर्वभावो मे श्रेष्ठभाव श्री नमस्कार का भाव है। नमस्कार भाव मे नमस्कार्य के प्रति सर्वस्व का दान एव सर्वस्व का समर्पण होता है जिससे उसका फल अगणित, अचिन्त्य एव अप्रमेय होता है। सर्वपापो को भेदित करने के लिए वह समर्थ है एव सर्वमगलो को आकर्षित करने मे वह अमोघ है।

अनाहत भाव का सामर्थ्य

अनाहत के आलेखन मे तीन वलय है जो भाव सम्बन्धी माने जाते हैं अर्थात् वे उत्तरोत्तर भाव वृद्धि के सूचक हैं। आगम का सार नमो भाव है। मन्त्र का सार अनाहत है। नमो भाव समता की वृद्धि करता है और यह समता अनाहत है। उसे सूचित (इगित) करने के लिए तीन वलयो का आलेखन होता है। अनाहत एक प्रकार की ध्वनि भी है जो निर्बाध सचालित होती है यही बताने के लिए उसका चित्रण वर्तुल से न कर कमान से किया जाता है अर्थात् आसक्ति से अनासक्ति एव व्यष्टि से समष्टि की तरफ जाने के लिए भाव ही समर्थ है। केवल क्रिया या ज्ञान मे वह सामर्थ्य नही। भाव जब तक विश्वव्यापी नही बनता है तब तक आहत होता है जब वह सर्वव्यापी बनता है तब अनाहत होता है। ज्ञान व क्रिया का

फल परिमित है, पर भाव का फल अपरिमित है वह अनाहत का आलेखन करता है। भाव मे समर्पण तथा सम्बन्ध है इसीलिए वह पूज्य है। पूज्यता का अवच्छेदक दान है परन्तु ग्रहण नही। समताभाव का दान ही सर्वोत्कृष्ट दान है। समता भाव सभी के लिए समान भाव धारण करना होता है। अत' वह अनाहत है।

नमस्कार प्रथम धर्म क्यों

जैनगमो का प्रथम सूत्र श्री पचमगल याने नमस्कार सूत्र है। उसका पहला पद 'नमो' है। यह नमस्कार क्रिया के अर्थ मे व्याकरण मान्य अव्ययपद है जिसका अर्थ है मैं नमस्कार करता हू। 'इसीलिए नमो अरिहताण' का वाच्यार्थ है "मैं अरिहत परमात्माओ को नमस्कार करता हू"। यहाँ नमो पद को प्रथम रखकर बताया गया है कि नमस्कार प्रथम धर्म है। धर्म की ओर प्रयाण करने हेतु नमस्कार ही मूलभूत मौलिक वस्तु है। नमस्कार से शुभ भाव जाग्रत होते है, शुभ भाव से कर्मक्षय एव कार्यक्षय से सकल कल्याण की सिद्धि होती है।

मिथ्याभिनिवेश का परम औषध

जीव का ससार परिभ्रमण अज्ञान के कारण है एव मिथ्यात्व उसकी पुष्टि करता है। अज्ञानी होते हुए भी मैं समझदार हूँ, एव मैं ज्ञानी हूँ ऐसे मिथ्याभिमान का ही दूसरा नाम मिथ्यात्व है। अज्ञानी होते हुए भी ज्ञानी की शरण में नही जाना ही मिथ्याभिनिवेश है। इसके कारण अज्ञानता का दोष टलता नही, उलटा दृढ होता है। नमस्कार मत्र मिथ्याभिनिवेश का औषध है। नमस्कार मे ऐसी स्वीकारोक्ति है कि मैं अज्ञानी हू। यह स्वीकारोक्ति अज्ञानी की गर्हा करवाती है, ज्ञानी की स्तुति

करवाती है तथा जीवन मे सारल्य भाव प्रकटाती है, और सरलता ही मोक्ष मार्ग की प्रथम शर्त है। जैसे बालक अज्ञानी है पर वह माता-पिता के शरण मे रहता है तो वह ज्ञानी भी होता है तथा सुखी भी। परन्तु जो बालक अज्ञान के साथ ही हठधर्मिता रखता है तथा ज्ञानी की शरण मे जाने को तैयार नही होता है, वह ज्यो-ज्यो बडा होता है त्यो-त्यो अधिक आपत्तियो मे आ गिरता है। इसी प्रकार मोक्षमार्ग मे भी अज्ञान क्षम्य है पर उसका अभिनिवेश अक्षम्य है। नमो मन्त्र उस अभिनिवेश को टाल देता है। नमो मन्त्र नम्रता को विकसित करता है। नमो मन्त्र द्वारा की ज्ञानियो की पराधीनता स्वीकृत की जाती है।

नम्रता एवं अधीनता

ज्ञान से अज्ञान टलता है, वह बात सच्ची है फिर भी जब तक अधूरा ज्ञान होता है तब तक उसका भी अहकार होना सम्भव है। इसीलिए जब तक ज्ञान पूर्ण नही हो जाय तब तक नम्रता परमावश्यक है। 'नमो' मन्त्र अपने लघुभाव को सदा टिकाकर रखता है तथा इसी लघुभाव के प्रभाव से एक न एक दिन जीव पूर्ण दशा को प्राप्त-कर सकता है। ज्ञान जब तक अपूर्ण है तब तक पूर्ण ज्ञानी की पराधीनता जीव को आगे बढाने मे सहायक बन सकती है। ज्ञानी के प्रति नम्रता तथा ज्ञानी की आज्ञा के प्रति पराधीनता प्रत्येक छद्मस्थ का प्रथम धर्म है। जिसको नमस्कार किया जाता है, उसकी उच्चता तथा स्वय की लघुता का भाव पूर्ण रूप से टिकाकर रखने के लिए योग्य को नमन करने की परम आवश्यकता है। बारम्बार का नमस्कार नम्रता तथा योग्य की पराधीनता को पुष्ट करता है। जिसके प्रति हम नम्र तथा आधीन बनते हैं, वे अपने हित के लिए क्या कहते हैं यह जानने की प्रथम जिज्ञासा जाग्रत होती है

तथा फिर उसकी हितकारिणी आज्ञा को जीवन मे जीवित रखने का वल प्राप्त होता है।

नमस्कार सभी धर्मों का मूल

जो वालक अपने गुरुजनो के प्रति नम्र तथा पराधीन वृत्ति वाला होता है वही उनके आदेशो का अनुसरण कर अपने विकास को साध सकता है। अत. नमस्कार विकास का परम साधन है। वचपन से ही वालक को माता-पिता को प्रणामादि करना सिखाया हो तो उससे उसके मन पर उनके प्रति सम्मान का भाव टिका रहता है। इसी प्रकार लोक या परलोक मे नमस्कार ही प्रथम धर्म है। हम जव तक पूर्ण ज्ञानी नही वनते हैं तव तक पूर्ण ज्ञानियो को, उनके स्वरूप को तथा उनके उपदेश को समझने वाले अधिक ज्ञानी, गुरु आदि के आश्रय मे रहना ही चाहिए और इस हेतु नमस्कार का वार-वार आश्रय लेना ही पडता है। वार-वार का किया हुआ नमस्कार मन पर देव-गुरु की अधीनता तथा आश्रितता का भाव सदा जाग्रत रखता है तथा उनके हितोपदेश के प्रति आदर-वहुमान का भाव टिका के रखता है। इसीलिए नमस्कार को सवसे प्रथम धर्म कहा जाता है तथा दूसरे सभी धर्मो का मूल भी है ऐसा स्पष्टरूप से समझा जा सकता है।

मन्त्र के अनेक अर्थ

नमस्कार मन्त्र है। मन्त्र के अनेक अर्थ हैं। मन्त्र का अर्थ है गुप्त भाषण। मन्त्र का अर्थ है आमन्त्रण, जिसे प्रणाम किया जा रहा है उसे हृदय प्रदेश मे पदार्पण करने हेतु आमन्त्रण। मन्त्र का अर्थ है मन का रक्षण। मन्त्र के वर्णो से मनका सकल्प विकल्प से रक्षण होता है। मन्त्र का अर्थ है विशिष्ट मनन

तथा उससे होने वाला जीव का रक्षण। विशिष्ट मनन सम्पर्क-ज्ञान का साधन बनता है तथा वह सम्पर्क-ज्ञान शुभ भाव जगाकर आत्मा का रक्षण करता है, योग्य मार्ग पर आरूढ करता है। सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चरित्र मे रहना ही योग्य मार्ग है एव मिथ्या ज्ञान-दर्शन-चारित्र मे रहना अयोग्य मार्ग है। मत्र मिथ्या रत्नत्रयी मे से जीव को छुडाकर सम्यक् रत्नत्रयी की ओर ले जाता है अत. मनन के द्वारा रक्षण करवाने वाला है यह सिद्ध होता है।

अक्षय फल देने वाला दान

नमो मत्र द्वारा श्री पचपरमेष्ठि भगवान् को समर्पित सम्मान के दान के बदले मे बडा से बड़ा दान मिलता है तथा वह दान है स्वयं की शाश्वत आत्मा का ज्ञान होना। स्वय की शाश्वत आत्मा का अनादिकाल से हुआ विस्मरण ही अनन्त दु.ख का मूल है तथा उसका स्मरण ही अनन्त सुख का मूल है। श्री पचपरमेष्ठि का स्मरण नमस्कार द्वारा स्वय की शाश्वत आत्मा का ज्ञान करवाकर अनन्तकाल तक नही घटे वैसा अक्षय ज्ञान दान करवाता है। जो सदैव देने वाले ही है पर कभी लेने वाले नही उनको समर्पित किया जाने वाला दान ही एक ऐसा दान है कि जिसका फल अक्षय होता है। श्री पंचपरमेष्ठि भगवान् सम्मान लेने की इच्छा से सर्वथा रहित हैं तथा जीवो को सर्वस्वदान करने हेतु ही जिनका संसार मे अस्तित्त्व है उनको नमस्कार द्वारा जब हृदय से सम्मान का दान किया जाता है तब उसका फल अपरिमित होता है।

पूज्य श्री आनन्दघनजी महाराज ने कहा है—

अहो अहो हुं मुजने नमुं, नमो मुज नमो मुजरे,
अमित फल दान दातारनी, जेहने भेट थई तुज रे।
शान्ति जिन एक मुज विनति॥

अहो मैं मुझको नमूँ नमस्कार मुझे,
मुझे नमस्कार है
वह तू ही है
जिसे अमित फल दान दाता की
भेंट हुई है
शान्ति जिन यही
मेरी पुकार है ॥ भावानुवाद

फिर अन्यत्र भी कहा है कि.—

नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं, नमस्तुभ्यं नमो नमः ।
नमो मह्यं नमो मह्यं, मह्यमेव नमो नमः ॥

अर्थात् परमात्मा को किया हुआ नमस्कार ही स्वयं की आत्मा को नमस्कार है तथा स्वयं की शुद्ध आत्मा को किया हुआ नमस्कार ही परमात्मा को नमस्कार है ।

नमो द्वारा सर्व समर्पण

नमो आत्मनिवेदन रूप भक्ति का एक प्रकार है । नमो द्वारा नमस्कार करने वाला परमात्मा के आगे "मैं तुम्हारा ही अंश हूँ, सेवक हूँ, दास हूँ", ऐसा स्वात्मनिवेदन करता है । नमो द्वारा प्रभु का एवं प्रभु के नामादि का श्रवण, कीर्तन एवं स्मरण होता है, प्रभु के रूप को वन्दन, अर्चन एवं पूजन होता है । वैसे ही प्रभु के समक्ष यह आत्मनिवेदन होता है कि मैं प्रभु का दास हूँ, सेवक हूँ एवं अंश हूँ । नमो द्वारा परमात्मा के साथ भक्ति का तात्त्विक सम्बन्ध स्थापित होता है नमो पर-ब्रह्म के साथ योग्य सम्बन्ध स्थापित करवाने वाला महा मंत्र है एवं वह आत्मनिवेदन पूर्वक स्वशरणागति को सूचित करता है । अहम्मन्यता, ममता, आदि पाप है जिनका मूल अज्ञानता

है। अज्ञान सहित सब पापो को नष्ट करने की शक्ति नमस्कार मे है, क्योकि नमस्कार में आत्म-समर्पण होता है। समर्पण का अर्थ अनात्म पदार्थों मे आत्मबुद्धि का विसर्जन तथा आत्मभाव मे आत्मा का निमज्जन है। उस निमज्जन का दूसरा नाम शरणागति है। नमो मन्त्र परमतत्त्व को समर्पण होने की क्रिया है। शरणागति को नवधा भक्ति के ऊपर दशम भक्ति कहा जाता है। इस भक्ति का आश्रय लेने वाले को वचन है कि "न मे भक्त. प्रणश्यति" मेरे भक्त का कभी नाश नही है अर्थात् वह मेरी दृष्टि से दूर नही होता है।

अहम्मन्यता तथा ममता से उद्भूत पाप ही बड़े से बड़ा पाप है। आत्मनिवेदन तथा शरणागति से उन पापो का अन्त होता है। इन दोनो पापो का मूल ब्रह्म सम्बन्ध का अज्ञान है। नमस्कार से सच्चा ब्रह्म सम्बन्ध साधित होता है जिससे अज्ञान, पाप एवं उसके विविध विपाक का सदा के लिए अन्त होता है।

नमो से होती भक्ति एवं पूजा की क्रियाएँ

नमो द्वारा मैं परमात्मा का स्मरण करता हूँ, कीर्तन करता हूँ, पूजा करता हूँ, वदन करता हूँ, प्रीति करता हूँ, भक्ति करता हू, आज्ञा को शिरोधार्य करता हूँ तथा असग भाव से उनके साथ मिल जाता हूँ। स्मरण कीर्तनादि द्रव्य-संकोच रूप है वैसे ही आज्ञापालन तथा शरण गति भाव संकोच रूप है। नमो में दोनो प्रकार के सकोच का अनुभव होता और केवल आत्मतत्त्व का विकास वांछित होता है।

नमो प्रीतिरूप है, भक्तिरूप है, वचनरूप है तथा असगरूप है। नमो इच्छारूप है, प्रवृत्तिरूप है स्थैर्यरूप है तथा सिद्धिरूप

भी है। नमो में भक्ति के सर्व प्रकार अन्तर्भत हो जाते हैं। द्रव्यपूजा तथा भावपूजा के सभी प्रकार नमो मन्त्र में समा जाते हैं।

सभी अवस्थाओं में कर्त्तव्य

श्री अरिहत को नमस्कार, श्री सिद्ध को नमस्कार, श्री आचार्य को नमस्कार, श्री उपाध्याय को नमस्कार तथा सर्व-साधुओ को नमस्कार आदि आत्मा की भिन्न-भिन्न अवस्थाओ को ही नमस्कार है। श्री आचार्य, श्री उपाध्याय तथा श्री साधु को नमस्कार छठे गुणस्थानक से बारहवें-तेरहवे गुणस्थानक तक की अवस्था को नमन है। श्री अरिहत को नमस्कार प्रमुखत (मुख्यत) तेरहवें गुणस्थानक को नमन है एव सिद्ध को नमस्कार मुख्यतः चौदहवे गुणस्थान को नमस्कार है। तत्त्व से उन-उन अवस्थाओ में आत्मा का भाव से परिणमन होता है। स्वय आत्मा का उन-उन विशुद्ध अवस्थाओ में परिणमन बाह्य भावो के साथ की अहम्मन्यता तथा ममता के भाव का नाश करता है तथा आन्तरिक भावो के साथ की अहम्मन्यता तथा ममता के भावो को पैदा करता है। वस्तुतः यह नमस्कार अहम्मन्यता व ममता का नाशक तथा निर्ममता, निरहम्मन्यता तथा समता का उत्पादक है। ममता समाधि-स्वरूप है तथा बाह्य विषयो की ममता सकलेश स्वरूप है। सकलेश को टाल समाधि को साधने वाला नमस्कार सर्वावस्थाओ मे करणीय है। प्रथम गुणस्थान में किया हुआ नमस्कार मिथ्यात्व का नाश करता है, चौथे गुणस्थानक मे कृत नमस्कार अविरति का नाश करता है तथा छठे गुणस्थानक मे किया हुआ नमस्कार प्रमाद का नाशक होता है। ऊपर के गुणस्थानको मे सम्भूत नमस्कार स्वभाव परिणमन रूप बन

असग भाव लाता है। कहा है कि—

जेह ध्यान अरिहंत को, तेहीज आतम ध्यान।
फेर कछु इणमें नहिं एहिज परम निधान ॥

ज्ञान ध्यान एवं समता

प्रत्येक पर्याय में द्रव्य अनुस्यूत है, द्रव्य मे गुण की प्रधानता है तथा गुण मे ज्ञान की प्रधानता है। आनन्द ज्ञान से भी श्रेष्ठ है। द्रव्य सामान्य वृद्धिकारक है, गुण सामान्य एकत्वकारक है तथा पर्याय सामान्य तुल्यताकारक है। इस प्रकार द्रव्य गुण पर्याय से परमात्म का ध्यान ही आत्मा का ध्यान है। इस प्रकार होता आत्म-ध्यान वृद्धिकारक, एकत्वकारक तथा तुल्यताकारक होने से अनन्त समता को अर्पित करने वाला है। समता-समभाव-समानवुद्धि आदि एकार्थक है। मोक्ष का अनन्तर कारण समता है। समता को मोक्ष का भाव-लिंग भी कहा गया है। वही समता आत्म ध्यान से प्राप्त होती है।

न साम्ये विना ध्यानं, न ध्यानेन विना च तत्
निष्कम्पं जायते तस्मात्, द्वयमन्योन्यकारणम्।

अर्थात् समता के विना आत्मध्यान तथा आत्मध्यान के विना निष्कम्प समत्व नही। अर्थात् ध्यान के विना समता भाव मे निश्चलता प्राप्त नही होती है। अत ध्यान का कारण समता तथा समता का कारण ध्यान है।

इस प्रकार ध्यान और समता परस्पर कार्यकारण-भाव को प्राप्त कर वृद्धि को प्राप्त होते है।

वृद्धि एकता एवं तुल्यता

द्रव्य से होने वाला आत्मध्यान वृद्धिकर होता है। अर्थात् शुभ भाव की वृद्धि करता है, गुण से होने वाला ध्यान भाव से एकत्व स्थापित करता है तथा पदार्थ से होता ध्यान भाव के

समान ही है। तुल्यता एकता तथा वृद्धि जब एक साथ मिलती है तब समता स्थिर होती है। स्थिर समता अनन्त द्रव्यो की समानता, गुणो की एकता और पर्यायो की तुल्यता के ज्ञान के ऊपर अवलम्बित है, उससे समता के इच्छुक जीवो को परमेष्ठि नमस्कार द्वारा अनुक्रमश द्रव्य से वृद्धि, गुण से एकता और पर्याय से तुल्यता के ध्यान का अनुभव करना चाहिये। जब ध्यान में परमेष्ठियो के शुद्ध आत्म-द्रव्य के साथ स्वयं का आत्म-द्रव्य मिलता है तब वृद्धि का अनुभव होता है। उनके गुणो के साथ जब स्वय के गुण मिलते है तब एकता का अनुभव सम्भव है। इस प्रकार तुल्यता, एकता और वृद्धि का अनुभव विषमता का नाश करता है और समता का प्रादुर्भाव करता है। इस परमेष्ठि नमस्कार मे नित्य एकता होने का अभ्यास क्रमश. प्रकर्ष को प्राप्त कर ध्यान को ध्येय रूप बनाने वाला होता है। आत्मा परमात्मस्वरूप होता है तथा व्यष्टि स्वय समष्टि रूप धारण कर अन्य मे परमेष्ठि स्वरूप बन जाता है। कहा है कि—

निज स्वरूप उपयोग थी, फिरी चलित जो थाय,
तो अरिहत परमातमा, सिद्ध प्रभु सुख दाय ॥१॥
तिनका आत्म सरूपका, अवलोकन करो सार,
द्रव्य गुण पज्जव तेहना, चिन्तवो चित्त मझार ॥२॥
निर्मल गुण चिन्तन करत निर्मल होय उपयोग,
तव फिरी निज स्वरूप का ध्यान करो थिर जोग ॥३॥
जे सरूप अरिहत को, सिद्ध सरूप वली जेह,
तेहवो आतम रूप छे, तिणमे नहि संदेह ॥४॥
चेतन द्रव्य साधर्म्यता, तेणे करी एक सरूप,
भेदभाव इण मे नहीं, एहवो चेतन रूप ॥५॥

चिन्मात्र समाधि का अनुभव

आत्मध्यान का फल समता है एव समता का फल निर्विकल्प उपयोग अर्थात् निर्विकल्प समाधि है। उस समाधि को निर्विकल्प चिन्मात्र समाधि कहते है। उसमें राग-द्वेष तथा सुख-दु ख से परे एक ऐसा चिन्मात्र उपयोग रहता है जिसे शास्त्रो मे ज्ञान चेतना के रूप मे पहिचाना जाता है, वह ज्ञान-चेतना वीतराग एवं सर्वज्ञ है। इससे उसमें केवल निरुपाधिक सुख का ही अनुभव होता है। उस सुख मे द्वन्द्व नही। अत वह द्वन्द्वातीत भी कहा जाता है। नमस्कार महामत्र के प्रथम पद मे ही इस निर्विकल्प चिन्मात्र समाधि को अनुभव करने का एक अनोखा प्रयोग है। गुरु मुख से नमस्कार मत्र की प्राप्ति होते ही नमो द्वारा देव तत्त्व के सम्मुख हुआ जाता है क्योंकि नमो पद के साथ ही अरिह शब्द जुडा हुआ है जो देव तत्त्व का वाचक है। जीवात्मा का दल परमात्मा है उस परमात्म-तत्त्व का अनुभव करने के लिए ताण शब्द जोडा गया है। यह ताण शब्द त्राण अर्थ मे है एव वह त्राण आज्ञा शब्द के साथ सम्बन्ध रखता है। जहाँ एव जब अरिहतो की आज्ञा का पालन मुख्य बनता है वहाँ एव तब मन, प्राण एवं आत्मा परमात्मा मे एकाकार होते हैं। इस प्रकार 'नमो अरिहताण' मत्र क्रमश गुरु, मत्र, देवता, आत्मा, मन एव प्राण की एकता करवाकर अन्तरात्मभाव जाग्रत करता है तथा अन्तरात्म भाव मे स्थिर कर परमात्म-भाव की भावना करवाता है। यह भावना अन्त मे परमात्म-भाव प्रकट कर अव्याबाध सुख का भोक्ता बनाती है।

नमो पद में निहित अमृत क्रिया

नमो शब्द विस्मय, पुलक एव प्रमोदस्वरूप है। भव-भय का सूचक भी नमो पद उत्तरोत्तर भाव वृद्धि को सूचित करने

वाला भी है। उसका परिणाम तद्‌गतचित्त में आता है। अर्थात् चित्त मे एकाग्रता लाने हेतु भी नमो पद परम साधन बनता है। भव का सच्चा भय तो तभी गिना जाता है जब तन्द्रित मनुष्य को यो लगे कि मेरा घर जल रहा है एव वह एकदम हक्का बक्का होकर उठे उस समय उसे जैसा भय लगता है वैसा भय ससार रूपी दावानल मे से मुक्त होने हेतु जव उत्पन्न हो जाय तब उसमे सच्चा भव-भय उत्पन्न हुआ गिना जाय। खुद का घर जल रहा हो और मनुष्य हक्का बक्का होकर उठे वैसे ही मोहनिद्रा मे सोया हुआ जीव कर्म दावानल के दाह मे से उबरने हेतु धर्मजागृति का अनुभव करे। वह सच्चा भव-भय है। यह नमो पद नमस्कर्ता के अन्तर मे जागे हुए भव-भय का सूचक है। जहा भय होता है वहाँ प्रतिपक्षी वस्तु पर भाव या प्रेम उत्पन्न होता है। उसी प्रकार भव से भय प्राप्त जीव को आत्मतत्त्व पर प्रेम होता हैं एवं उस प्रेम का सूचक भी नमो पद होता है। सच्चा प्रेम प्रिय वस्तु को ध्यान मे लाता ही है और उसे साधने हेतु विधिविधान में सावधान बनाता ही है। नमो पद के साथ वह सावधानी एव एकाग्रता भी सयुक्त ही है। इसीलिए यह नमो सावधानी एव तन्मयता का भी प्रतीक बन जाता है। इस प्रकार अमृत क्रिया को सूचित करने वाले जितने लक्षण शास्त्र मे कहे गए हैं वे सब नमो पद के आराधक मे आने वाले हैं और तभी नमो पद सार्थक बनता है।

अमृत क्रिया के लक्षण

तद्‌गत चित्तने समयविधान,
भावनी वृद्धि भव भय अति घणो,
विस्मय पुलक प्रमोद प्रधान,
लक्षण ए छे अमृत क्रिया तणों।

उपा० श्री यशोविजयजी महाराज

विस्मय पुलक एव प्रमोद सद्‌वस्तु की प्राप्ति के हर्पातिरेक को सूचित करते हैं। अवभ्रमण का भय ही हर्पातिरेक को उत्पन्न करने वाला है। भव भ्रमण का भय जितना तीव्र होगा उतनी ही भाव की वृद्धि अधिक होगी एव भाव की वृद्धि जितनी अधिक उतनी ही आराधना मे सावधानी एव एकाग्रता अधिक। इस प्रकार अमृत क्रिया के सभी लक्षण नमो पद की आराधना मे घटित होने हैं। नमो पद का आराधक नमस्कार की विधि सम्हालने मे सावधान इसलिए होता है कि उसके हृदय मे भव का भय है। इससे धर्म एव धर्म सामग्री पर वह प्रेम धारण करता है एव यह प्रेम विस्मय, पुलक एव प्रमोद मे अभिव्यक्त होता है।

समयविधान शब्द के दो अर्थ निकलते हैं समय का अर्थ है जिस समय जो काम करने को कहा गया है उस समय वही करना—"काले काल समाचरेत्।" योग्य काल को सयोजित करना यह प्रथम अर्थ है। समय का दूसरा अर्थ सिद्धान्त है। सिद्धान्त मे कहे हुए विधि-विधानानुसार धर्मानुष्ठान का आचरण करना ही समयविधान है। विधि-विधान मे स्थान मुद्रा आदि जिस प्रकार संयोजित करने के लिए कहा हो उसी प्रकार सयोजित कर क्रिया करना। इस प्रकार काल, देश, मुद्रा आदि का सयोजन करना समय विधान है। भाव की वृद्धि चित्त की एकाग्रता आदि है। अर्थ का आलोचन गुणों के प्रति राग एव एकाग्रता लाने के साधन हैं।

नमो मंत्र की अर्थ भावना

अर्थ भावना से युक्त मन्त्रजाप विशिष्ट फलदायक होता है। नमस्कार महामत्र की अर्थ भावना अनेक प्रकार से विचारी जा सकती है। नमो पद पूजा के अर्थ मे है एव पूजा द्रव्य भाव

सकोच के अर्थ में है। द्रव्य संकोच शरीर सबधी है एव भाव सकोच मन सबधी है। अहंत्व ममत्व के संकोच मे भी सकोच शब्द का प्रयोग हो सकता है। शरीर मे अहत्व की बुद्धि का एव मन-वचनादि मे ममत्व की बुद्धि का संकोच अर्थात् अहंत्व-ममत्व के विसर्जनपूर्वक श्री अरिहतादि परमेष्ठियो को नमस्कार ही निश्चय रूप से आत्मतत्त्व को ही नमस्कार है। चैतन्य स्वरूप में स्वयं का, पर का एवं परमात्मा का आत्मतत्त्व एक ही है। इस प्रकार "सर्वं खल्विद ब्रह्म" की भावना भी श्री नमस्कार मंत्र का ही अर्थ है। तत्त्वमसि। प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म। अयमात्मा ब्रह्म। अहं ब्रह्मास्मि। सर्वं खल्विद ब्रह्म। इत्यादि वेद के सभी महावाक्यों की भावना श्री नमस्कार मत्र के अर्थ में उपर्युक्त प्रकार से सापेक्ष भाव से सिद्ध हो सकती है।

श्री नमस्कार मन्त्र में पुण्यानुबंधी पुण्य

श्री नमस्कार मत्र दुष्कृत का क्षय करता है, सुकृत (पुण्य) को पैदा करता है एव आत्मा का शुद्ध स्वरूप के साथ अनुसंधान कर देता है। ससारी आत्मा पापरुचि के कारण संसार मे परिभ्रमण करती है। श्री नमस्कार मत्र पाप-रुचि ढालता है, एव धर्म-रुचि प्रकट करता है। पापरुचि ढलने से परपीडा-परिहार की वृत्ति जागती है एव धर्मरुचि प्रकट होने से परानुग्रह का परिणाम उत्पन्न होता है तथा वे दोनो होने से चित्त निर्मल होता है। निर्मल चित्त मे आत्म-ज्ञान आविर्भूत होता है। आत्म-ज्ञान अनादि कालीन अज्ञान एवं मोह का नाश कर शुद्ध स्वरूप की अनुभूति करवाता है। शुद्धात्मा की अनुभूति सकल कर्म के क्षय का कारण बन अव्याबाध पद की प्राप्ति करवाती है।

पुण्यानुबंधी पुण्य के स्वरूप को बताते हुए शास्त्रो मे कहा गया है–

दया भूतेपु वैराग्य, विधिवत् गुरुपूजनम् ।
विशुद्धा शीलवृतिश्च, पुण्यं पुण्यानुवन्ध्यद: ।
परोपतापविरति: परानुग्रह एव च ।
स्वचित्तदमन चैव, पुण्य पुण्यानुवन्ध्यद. ।

भावार्थ—श्री नमस्कार मंत्र मे पुण्यानुवन्धी पुण्य की प्राप्ति का उपर्युक्त ममस्त उपायो का सग्रह है क्योकि श्री नमस्कार मत्र से भूतदया का परिणाम जागता है, समार के मुखो के प्रति उदासीनता का भाव जागता है, देव गुरु की विधिवत् एकाग्रचित्त से उपासना होती है, दया-दान-परोपकार-सदाचार आदि का पालन करने की शीलवृत्ति जागती है, पर पीडा से निवृत होने की एव दूसरे को सहायरूप वनने की वृति उत्पन्न होती है, चित्तावृति की अशुद्धि का क्षय होता है एव विशुद्ध चित्त की उत्पत्ति होती है । साथ ही विशुद्ध चित्त मे आत्मज्ञान का प्रतिविम्व पडता है एव आत्म ज्ञान मोह क्षय कारण वन मोक्षसुख प्रदान करवाता है ।

इन सभी लाभो का मूल श्री नमस्कार मन्त्र की आराधना ही है । अत श्री नमस्कार महामन्त्र की आराधना को शास्त्रो मे शिवसुख का अद्वितीय कारण माना है ।

नमस्कार शास्त्रों का महान् आदेश

अज्ञान एव अहम्मन्यता के आग्रह को मिटाने हेतु नमस्कार अनिवार्य है । नमस्कार का अर्थ है देव गुरु की आधीनता का स्वीकार । देव गुरु को नमस्कार करना शास्त्रो का महान् आदेश है । शास्त्रों के इस आदेश को समझने हेतु वुद्धि की आवश्यकता है । जिसमे स्वय प्रज्ञा नही होती है, शास्त्र उसका क्या लाभ कर मकते हैं । यहाँ प्रज्ञा का अर्थ है सद्‌वुद्धि

वह है कि जो शास्त्र वचन पर श्रद्धा पैदा करने में एव उस पर श्रद्धा के वाद उसे जीवन में उतारने हेतु सहायक बने। शास्त्र वचन को समझने हेतु जो प्रज्ञा आवश्यक है, उस प्रज्ञा का उपयोग अवश्य करना चाहिये। उससे विपरीत प्रज्ञा का अर्थात् कुतर्क का नही। प्रज्ञा से शास्त्र के वचन एवं उसका परमार्थ समझना सरल होता है, साथ ही उत्सर्ग-अपवाद व्यवहार निश्चया-ज्ञान-क्रिया इत्यादि के उपयोग की सच्ची दिशा समझी जाती है। सद्वुद्धि रूपी प्रज्ञा की सहायता से ही शास्त्र वचन का दुरुपयोग नही होता एवं सदुपयोग होता है। उससे शास्त्र वचनो की सापेक्षता समझी जाती है एवं प्रत्येक अपेक्षा का योग्य उपयोग कर जीव की क्रमिक आत्मोन्नति साधी जा सकती है। शास्त्रो का आदि वाक्य परमेष्ठि को नमस्कार है एव उसका भी आदि पद नमो है। वे शास्त्राधीनता सूचित करते है। शास्त्रो के आदि प्रकाशक देव एवं गुरु की पराधीनता ही आत्मा की स्वाधीनता प्राप्त करने का एकमात्र राजमार्ग है यह नमो पद समझाता है।

शुद्ध चिद्रूप रत्न

ज्ञेयं दृश्यं नगम्यं मम जगति, किमप्यस्ति कार्य न वाच्यं,
ध्येय श्रेयं न लभ्यं न च विशदमते, श्रेयमादेयमन्यत्।
श्री मत्सर्वज्ञ-वाणी-जल-निधि-मथनात्, शुद्धचिद्रूपरत्नं।
यस्मात्, लब्धं मयाऽहो कथमपि विधिनाऽप्राप्तपूर्वं प्रियं च॥

भावार्थ श्री सर्वज्ञ भगवान् की वाणीरूपी महासागर के मथन करने से शुद्ध चिद्रूप रत्न को मैंने महा भाग्य के योग से महा प्रयत्न से प्राप्त किया है। कि जो पूर्व मे कभी भी प्राप्त नही हुआ था एव जो आनन्द से भरपूर है। जिसे प्राप्त करने के पश्चात् अव मुझे दूसरा कुछ भी जानने योग्य, दर्शन योग्य,

खोजने योग्य, करने योग्य, कहने योग्य, ध्यान करने योग्य अथवा श्रेय रूप मे ग्रहण करने योग्य है ही नही, यही वास्तव मे आश्चर्य है।

श्री सर्वज्ञ भगवान् की वाणी ने जिसकी महिमा गायी है, जो वस्तु जानने योग्य, देखने योग्य, प्राप्त करने योग्य, बोलने योग्य, करने योग्य, ध्यान करने योग्य, सुनने योग्य, आदर योग्य एव प्रीतियोग्य है वह केवल शुद्ध चिद्रूप रत्न ही है। ज्ञान चेतना के स्थिर होने से मिलने वाला श्रेय परमानन्द है, अत उसकी प्राप्ति के लिए ही सब प्रकार के प्रत्यन करने चाहिये, उसकी प्राप्ति से ही कृत कृत्यता का अनुभव करना चाहिये। यही शुद्ध चिद्रूप रत्न नमस्कार मन्त्र का ज्ञेय एव ध्येय है, श्री पच परमेष्ठि भगवान् इस शुद्ध चिद्रूप रत्न को प्राप्त कर चुके हैं। अत वे श्रीमान् बार-बार नमनीय हैं, पूजनीय है, सेवनीय हैं, आदरणीय हैं एव सब प्रकार से सम्माननीय जीव हैं। श्री नमस्कार मन्त्र के स्मरण से, जाप से, श्री पच परमेष्ठि भगवान् मे निहित शुद्ध चिद्रूप रत्न का ही स्मरण, जाप एव ध्यान होता है, उसके द्वारा अपने शुद्ध चिद्रूप आत्मरत्न में ही तन्मयता होने से उनका ध्यान परम आलम्बन रूप है, यही श्री नमस्कार द्वीप है, दीप है, त्राण है, शरण है, गति है एवं प्रतिष्ठान है। उन सबका एक ही अर्थ है कि त्रिकाल मे एवं त्रिलोक मे शुद्ध चिद्रूप रत्न यही है, द्वीप, दीप, त्राण, शरण, गति एव परम प्रतिष्ठान है। उसमे त्रिकरण योग से लीन होना ही परम पुरुषार्थ है। उससे रागद्वेषादि भावो का विसर्जन होता है एव ज्ञानादि भावो का सेवन होता है, साथ ही सांयोगिक भाव से पर बनकर असांयोगिक आत्मभावो मे स्थिर हुआ जाता है। शुद्ध चिद्रूप आत्मरत्न ही एक मात्र ध्येय है, ऐसी श्रद्धा सुदृढ बनती है, जिसको सुदृढ बनाने का परम उपाय श्री पच परमेष्ठि नमस्कार है। इसी से श्रुत केवली

भवगान् भी आपत्ति के समय केवल उसी का आश्रय लेते हैं। शुद्ध विद्रूप रत्न की वह मजूषा है उसका भार अल्प है एव मूल्य अधिक है। अत उस रत्न मजूषा को वे सदा साथ रखते है। उससे अज्ञान, दारिद्र एवं मिथ्यत्वा कोट सदा के लिए विचूर्णित हो जाता है। पुन. दु.ख दुर्भाग्य आदि का भी स्पर्श नही हो सकता है। दु ख दुर्गति से विचलित लोगो को हमेशा सुख सौभाग्य को अर्पित करने वाला रत्न पिटक श्री नमस्कार मन्त्र है। उसमे सबसे अधिक मूल्यवान शुद्ध चिद्रूप रत्न निहित होने से सम्यक् ज्ञानी एव सम्यक् दृष्टि जीव उसे अपने प्राणो से भी अधिक प्यारा मानते हैं। उसके मिलने के पश्चात् दु·ख दुर्गति नष्ट होने का परम सन्तोष, परम घृति का अनुभव होता है। सर्वज्ञवाणी के मंथन से प्राप्त श्री नमस्कार मन्त्र की श्रद्धा परम घृति को प्रदान करती है, यह घृति धारणा को प्रकट करती है, ध्यान को स्थिर करती है एव चित्र समाधि के परम सुख का अनुभव कराती है।

ज्ञानादि से एकता एवं रागादि से भिन्नता

श्री नमस्कार मन्त्र द्वारा ज्ञानादि से एकता एवं रागादि से भिन्नता का अनुभव होता है, जिससे उपयोग मे एकतारूप ज्ञान एवं रागादि से भिन्नतारूप वैराग्य युक्त शुद्धात्मा का अनुभव होता है। उस अनुभव मे रागादि से भेद का ज्ञान ही सवर है एवं ज्ञानादि से भेद का ज्ञान पूर्व कर्म का निजरा करवाता है। इस प्रकार नमस्कार मन्त्र सवर-निर्जरा की दशा प्राप्त करवाने वाला होने से उसमें तन्मयता परमानन्द रूपी मोक्ष का परम उपाय है। ऐसा सम्यक् दर्शन होते ही आत्मा मे आनन्द की अनुभूति एव सवर निर्जरा का प्राप्ति का आरम्भ हो जाता है। ज्ञान चेतना रागादि से भिन्न है। जिस प्रकार

वाला है। नवकार शुद्धात्म परिणमन रूप है। श्री नवकार मन्त्र को जानने से आत्मा रागादि भाव एव परसंग से मुक्त होती है जो सच्ची मुक्ति है।

शुद्धोपयोग मे स्थित श्री अरिहत, श्री सिद्ध आदि परमेष्ठि आत्मा से ही उत्पन्न विषयातीत, निरुपम एव अनन्त विच्छेद-रहित सुख का अनुभव करते है। उस स्वरूप का ध्यान धर्मध्यान के कम से शुक्ल ध्यान का कारण बन कर्मरूपी ईंधन के समूह को शीघ्र भस्मीभूत करता है। हृदय मे आत्मस्वभाव की लब्धि प्रकाशमान होने के साथ ही शुभाशुभ के कारण भूत संकल्प-विकल्प शान्त हो जाते है। जो केवल ज्ञान-स्वभावी है, केवल दर्शन-स्वभावी है, केवल सुखमय है एव केवल वीर्य-स्वभावी है, वही आत्मा है ऐसा ज्ञानी पुरुष सोचते है। जिस ध्यान मे ज्ञान से आत्मा प्रतिभासित नही होती है, वह ध्यान नही है। जो ज्ञानी नित्य उपयुक्त होकर शुद्धात्म स्वभाव का परिशीलन करता है वह अल्पकाल मे ही सभी दु खो से मुक्त हो जाता है। श्री नमस्कार मन्त्र आत्मध्यान का अनन्य साधन है। जिससे दर्शन मोह का विनाश होता है। आत्म भावना मे प्रतिक्रमण, प्रतिसरण, प्रतिहरण, वारण, निवृ ति, निन्दन, गर्हण और शुद्धि एक साथ होती है। नमस्कार से आत्मभावना होती है। अत नमस्कार प्रतिक्रमण, प्रतिसरण आदि रूप है। उससे मिथ्यात्व, अज्ञान तथा पापादि आस्रवो का त्याग होता है, साथ ही आत्मस्वरूप का असगभाव से ध्यान होता है। शुभोपयोगयुक्त आत्मा निर्वाण को प्राप्त करती है। धर्म ध्यान एव शुक्ल ध्यान दोनो का कारण होने से नमस्कार स्वर्गापवर्ग को देने वाला है ऐसा सिद्ध होता है। मुक्ति का अर्थ है ससार के रोग शोक से मुक्त होना, ज्ञान दर्शनादि अनुपम वस्तुएँ प्राप्त करना तथा परमसुख तथा परम-आनन्द का अखण्ड अनुभव करना। सत्सग रहित ध्यान

तरंगायित रहता है। श्री नमस्कार मन्त्र ससत्संग शुभ ध्यान होने से निस्तरंग अवस्था की प्राप्ति मे सहायक होता है। सन्तो के बिना गूढ बात का तार निकलता नही, अनन्त की यात्रा में सन्त की सहायता अनिवार्य है। नमस्कार में सन्त की पूरी-पूरी सहायता होने से गूढ बात का सार प्राप्त किया जा सकता है।

आलम्बन के प्रति आदर

आलंवनादरोद्‌भूत-अत्यूहक्षययोगतः ।
ध्यानाद्यारोहणभ्रंशो योगिनां नोपजायते ॥

श्री अध्यात्मसार.

भावार्थ—आलम्वनो के आदर से उत्पन्न हुआ विघ्नो का क्षय योगी पुरुषो को ध्यानादि के आरोहण से च्युत नही होने देता, अत. सदालम्बनो का सेवन निरालंबन ध्यान में जाने हेतु सेतुरूप है एवं उसमे जाने के पश्चात् फिर पतन न हो इस हेतु वह आधार आलम्बन रूप बन जाता है।

"एगो मे सासओ अप्पा नाणदंसणसंज्जुओ।"

अथवा शुद्‌ध बुद्‌ध चैतन्यमय, स्वयज्योति, सुख, ध्यान इत्यादि विशेषणो वाला शुद्‌ध स्वरूप श्री परमेष्ठि भगवान् मे आविर्भूत है। उनसे सम्बन्ध स्थापित कराने वाला भी परमेष्ठि मन्त्र है, अत वह सभी मन्त्रो मे शिरोमणिभूत मन्त्र है। सभी तत्त्वो में शिरोमणिभूत तत्त्व आत्म-तत्त्व है और उसमे भी शिरोमणिभूत शुद्‌ध परमात्मतत्त्व है उसे सीधा नमस्कार परमेष्ठि मन्त्र से ही पहुँचता है। यह नमस्कार प्रतिबिम्बित क्रिया रूप होकर अपने शुद्‌ध स्वरूप मे पहुँचता है। शुद्‌ध स्वरूप का मूल्य अपरम्पार है। शुद्‌ध स्वरूप चैतन्य का महासागर है। उसके आगे जड सुवर्ण एव रत्न के पर्वत भी मूल्यहीन हैं।

कमल कीचड के मध्य भी निर्लिप्त है सुवर्ण जगरहित है जीभ चिकनाहट से भी चिकनी नही होती, अथवा मन्त्र के वर्ण जैसे विषापहार करते है वैसे ही रागादि से भिन्न ज्ञान चेतना कर्मफल के आस्वादन का विष हरण कर लेती है एव जीभ, सुवर्ण एव कमल के सदृश रागादि के लेप से रहित रहती है। ऐसा भेदाभेदा अथवा एकत्व पृथकत्व विज्ञान सवर-निर्जरारूप होने से वीतरागिता एव सर्वज्ञता का वीज है। जिसका वचन श्री नमस्कार मन्त्र को होता है क्योकि उसमे केवल ज्ञान चेतना को नमस्कार है, ज्ञान चेतना का वहुमान है तथा है ज्ञान चेतना की उपादेयता का पुन पुन भावन। नमस्कार सम्यक् दृष्टि जीवो का प्राण है। श्री नमस्कार मन्त्र से ज्ञान शक्ति एव वैराग्य शक्ति दृढ एव स्थिर होती है। ज्ञान का अर्थ है शुद्ध चिद्रूप स्वरूप का अनुभव एव वैराग्य का अर्थ है परद्रव्य परभावो से भिन्नता की अनुभूति। इस अनुभूति का झुकाव शुद्ध स्वरूप की तरफ होने से द्रव्य कर्म, भाव कर्म एव नो कर्म (इपत् कर्म) कर्म की तरफ उदासीन भाव सेवित होता है जिससे अशुद्ध परिणति दिन प्रतिदिन घटती जाती है एव शुद्धता वढती जाती है उसी का नाम निर्जरा तत्त्व है। ज्ञान वैराग्य सम्पन्न सम्यक् दृष्टि जीव वीतराग एव सर्वज्ञ का ही उपासक होता है। श्री नमस्कार मन्त्र मे वीतराग सर्वज्ञ तत्त्व की उपासना होती है। निर्ग्रन्थता वीतरागिता का बीज है एवं ज्ञान चेतना के साथ एकत्व ही सर्वज्ञता का बीज है। ग्रन्थ राग का नाम है। उससे अपने स्वरूप के भेद को जो जानते है एव तदनुसार जीवन जीते हैं वे निर्ग्रन्थ है। जो जानते हुए भी वैसा जीवन जी नही सकते वे अविरति सम्यक् दृष्टि है, एव जो थोडा-थोड़ा जीते है वे देशविरति सम्यक् दृष्टि हैं।

दुःख भावित ज्ञान

अदुःखभावितं ज्ञानं क्षीयते दुःखसन्निधौ।
तस्माद्यथाबलं दुःखैरात्मानं भावयेन्मुनिः॥

भावार्थ—दु खरहित अवस्था मे भावित आत्मज्ञान दु.ख की अवस्था मे नष्ट हो जाता है। अत. यथाशक्ति कष्ट सहन करते हुए आत्मज्ञान की भावना करनी चाहिये।

मरणान्त कष्ट के समय भी श्री परमेष्ठि नमस्कार समाधि मे सहायक होता है। उसका कारण है उसमे रागादि से भिन्न वीतराग एव ज्ञानादि से अभिन्न सर्वज्ञ तत्त्व का चिन्तन-भावन होता है। शुद्ध स्वरूप का यथार्थ भावन होने से प्रतिकूल समय मे भी वह ज्ञान विद्यमान रहता है एव आनन्द इसकी अनुभूति करवाता है। अनुकूल समय तीनो कालों मे एव प्रतिकूल समय मे बार-बार श्री नमस्कार मन्त्र को भावित करने का आदेश है, तत्पश्चात् आत्मज्ञान को दु ख मे एव सुख मे भी भावित कर स्थिरतर करने का आशय है।

सत्संग से निस्तरंग अवस्था का कारण

जीव परिणामी स्वभाव वाला है। जब वह शुभाशुभ परिणाम में परिणमित होता है तब वह शुभाशुभ होता है एव जब शुद्ध परिणाम में परिणमित होता है तब वह शुद्ध होता है। श्री नमस्कार मन्त्र जीवन को शुभाशुभ परिणाम मे परिणमित होने से रोक शुद्ध परिणाम मे परिणमित करता है। अत नमस्कार का एक अर्थ शुद्ध स्वभाव मे परिणमन भी है। नमन का अर्थ है परिणमन। श्री अरिहतादि परमेष्ठिओ के शुद्धस्वरूप के आलम्बन से अपनी आत्मा का शुद्ध परिणमन कारक होने से श्री नवकार मन्त्र जीव को मुक्ति प्रदान करने

एकत्व पृथक्त्व विभक्त आत्मा

सम्यक्दृष्टिजीव चैतन्य के स्वभाव एव सामर्थ्य को पहिचानता है। अत उसे चैतन्यभिन्न वस्तु के प्रति अन्तर्मन से राग नही होता है। प्रत्युत हेय-बुद्धि होती है। उसे स्वरूप में एकत्वबुद्धि एवं पररूप मात्र मे विभक्तबुद्धि होती है। ऐसी एकत्व-विभक्त आत्मा ही स्वस्वरूप मे प्रकाशित होती है क्योकि वह शुद्ध है। आत्मा की आत्मतत्त्व की महिमा अगाध है। राग से उसकी भिन्नता एव ज्ञान से उमकी एकता बताकर उसका आश्रय लेने का विधान शास्त्रकारो ने किया है। श्री नमस्कार मन्त्र सभी आगमो का सार कहलाता है क्योकि उसमें एकत्व-पृथक्त्व विभक्त शुद्ध आत्मतत्त्व क बहुमान गर्भित नमन का ग्रहण है।

चैतन्य की साधना का पंथ

ज्ञानमय निर्मल द्रव्यगुरण पर्याय ही आत्मा का स्वरूप है जिनका स्वामी आत्मा है इसके अतिरिक्त वस्तु का स्वामीत्व जब श्रद्धा एव ज्ञान श्रद्धा एव ज्ञान मे से हट जाता है तब वे सम्यक् होते है। श्री नमस्कार मन्त्र ही चैतन्य की साधना का पथ है जो वीर का है, कायर का नही। श्री वीर प्रभु से प्रशस्त मार्ग पर चढे हुए भी वीर हैं जिनकी वीरता उनको इस मार्ग पर आगे बढने हेतु आवश्यक वैराग्य, श्रद्धा एवं उत्साह अर्पित करती है। श्री नमस्कार मन्त्र की आराधना से वह वीरता पुष्ट होती है। उस मार्ग पर आगे बढने हेतु परिषह-उपसर्ग आदि सहन करने का धैर्य भी श्री नमस्कार मन्त्र की आराधना से प्रकट होता है। श्री नमस्कार मन्त्र इस स्वरूप की साधना का पथ होने से आरम्भ में कष्ट दायक है। परन्तु अन्त मे अव्याबाध सुखदायक है। तप-अष्टक मे कहा है कि--

सदुपायप्रवृत्तानां-उपेयमधुरत्वत
ज्ञानिनां नित्यमानन्द-वृद्धिरेव तपस्विनाम् ॥१॥

भावार्थ—उपेय का अर्थ है साध्य। साध्य की मधुरता होने से साधन मे प्रवृत्त हुए तपस्वी ज्ञानियो को तप के कष्ट मे भी नित्य आनन्द की वृद्धि का अनुभव होता है।

बाह्य कष्ट मे भी आन्तरिक आनन्द अनुभव करने की कुजी श्री नमस्कार मन्त्र मे से प्राप्त होती है क्योकि वह शुद्ध ज्ञान एव आनन्दमय सच्चिदानन्द स्वरूप के सन्मुख होने की प्रक्रिया है। देहादि से भिन्न-भिन्न शुद्ध आत्म-स्वरूप की सभी भावना करने वाली आत्मा मे तीव्र वैराग्य, उदासीनता, प्रतिकूलता में भी सहनशीलता एव धैर्य आदि आवश्यक सद्गुण सहज प्रकट होते हैं। कहा है कि—

धनार्थिनां यथा नास्ति, शीततापादिदु:सहम्।
तथा भवविरक्तानां, तत्त्वज्ञानार्थिनामपि॥

भावार्थ—धनार्थी जीवो के लिए जैसे शीततापादि के कष्ट दु सह नही होते वैसे ही तत्त्वज्ञान के अर्थी जीवो एव भव से विरक्त महात्माओ को भी उस मार्ग मे आती प्रतिकूलताएँ एव कष्ट सहन करने दु सह नहीं होते हैं।

श्री नमस्कार मत्र से शुद्ध चैतन्य स्वभाव के साथ एकत्व साधा जाता है एव चैतन्य से भिन्न पर पदार्थों एव रागादि भावो के प्रति उदासीनता समायोजित की जाती है। वह श्री नमस्कार मत्र शुद्धात्म द्रव्य, शुद्धात्मगुण एवं शुद्धात्म पर्याय के साथ एकत्व, उसकी साधना पर रुचि, बहुमान एव अन्तरग प्रीति उत्पन्न करवा कर प्रतिकूलताओ को सहन करने का बल प्रदान करता है। उस हेतु को लक्ष्य मे रख ज्यो-ज्यो उसका (श्री नमस्कार मत्र का) आराधन होता जाता है त्यो-त्यो आत्मतत्त्व के निकट जाने का एवं फलस्वरूप परमात्मतत्त्व की साक्षात् अनुभूति करने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

तात्त्विक भवनिर्वेद एवं मोक्षाभिलाष

उपकारी के प्रति कृतज्ञता एव अपकारी के प्रति क्षमापना सिखाने वाला मंत्र 'नमामि' एवं 'खमामि' है।

व्यवहारधर्म का बीज कृतज्ञता एवं क्षमापना है। कृतज्ञता से उत्पन्न क्षमापन के मूल बहुत गहरे होते हैं। जितना उपकार मैं प्राप्त करता हूँ उतना उपकार मैं दूसरो के प्रति नही कर सकता हूँ इस खेद से उत्पन्न क्षमापना जीव को अत्यन्त शुद्ध-पवित्र कर देती है। उपकारियो के उपकार का वदला मे नही चुका सकता हूँ। यह बदला तभी चुक सकता है जबकि मैं जितनों का उपकार लेता हूँ, उससे भी अधिक उपकार दूसरो के ऊपर करूँ। ससार मे यह संभव नही है। अतः अनन्त काल पर्यन्त जहाँ परोपकार ही हो सके ऐसे सिद्ध पद को प्राप्त करने की तीव्र उत्कठा उत्पन्न होती है। उसी का नाम तात्त्विक भवनिर्वेद एव तात्त्विक सवेगमोक्षाभिलाष है। ससार में जितना उपकार लिया है उतना दिया नही जाता। फिर वह उपकार भी अपकार मिश्रित होता है। शुद्ध उपकार तो सिद्ध पद मे है कि जो उपकार लेता नही, अपकार करता नही एव अनन्त काल तक अपने आलम्वन से अनन्त जीवो के लिए सतत उपकार ही करता है। अत उत्तम जीवो को एक सिद्धपद ही परम प्रिय एव परम उपादेय प्रतिभासित होता है।

एक में सब एवं सब में एक

नमस्कार मे नौ पद समाविष्ट हैं। श्री अरिहत एवं सिद्धो के नमस्कार से सम्यकदर्शन, श्री आचार्यो के नमस्कार से सम्यक् चरित्र, श्री उपाध्यायो के नमस्कार से सम्यक् ज्ञान एव श्री साधु के नमस्कार से सम्यक्तपगुण का आराधन होता

है अथवा सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चरित्र एव तपगुण के चाहने वाले के लिए पाँच पदो का नमस्कार अनिवार्य है। देव को किया हुआ नमस्कार दर्शन गुण को विकसित करता है एवं धर्म को किया हुआ नमस्कार चारित्र गुण तथा तपगुण को विकसित करता है। सम्यक् दर्शन एव सम्यक् ज्ञान सहित साधित तप-सयमरूप धर्माराधना ही मुक्ति फल को देती है। उसका अर्थ है देव गुरु के नमस्कारपूर्वक साधित धर्मक्रिया ही मोक्ष का कारण वनती है अथवा पाँचो परमेष्ठि चारो गुणो को धारण करने वाले होने से पाँचो को किया हुआ नमस्कार चारो गुणो को विकसित करता है।

एगम्मि पूइए सव्वे ते पूईया होंति
जैसे एक की पूजा में सबकी पूजा है वैसे
एगम्मि हीलिये सव्वे ते हीलिया होंति।
एक की अवहेलना सव की अवहेलना है।

इस प्रकार गत प्रत्यागत अथवा अनुवृत्ति व्यावृत्ति कार्यसिद्धि करते है। सम्यक् दर्शनादि चार गुणो को धारण करने वाले कोई एक परमेष्ठि को किया हुआ नमस्कार पाचों को ही नमस्कार है। जिस प्रकार यह वात सत्य है वैसे ही चतुर्गुणधारी इन पांचों में से किसी एक को किए हुए अनमस्कार का परिणाम भी पांचो को किया हुआ अनमस्कार होता है। गुणो के समान एक को भी अनमस्कार तत्वत सबको अनमस्कार है। जैसे साधु गुण सयुक्त एक साधु को भी किया हुआ नमस्कार अढाई द्वीप मे स्थित सभी साधुओ को पहुँचता है वैसे ही साधुगुण युक्त एक को भी अनमस्कार भाव सभी के प्रति अमनस्कार भावतुल्य है। परमेष्ठि की अवज्ञा नही करनी चाहिये तभी वह नमस्कार विवेकयुक्त होता है। उपर्युक्त प्रकार से विचार करने से स्पष्ट होता है कि चतुर्गुण के इच्छुक को पांचो पदो का नमस्कार आवश्यक है।

तात्त्विक नमस्कार

'तत्त्वमसि' तात्त्विक नमस्कार है। उसका प्रयोग उसी समय होता है कि जब ध्याता ध्यानावेश को पूर्ण कर ध्येयावेश में प्रवेश करने वाला होता है। द्रष्टा को जब स्वरूप मे अवस्थान करना होता है तब ध्याता गौण बनता है तथा ध्येय मुख्य बनता है अर्थात् ध्येयावेश मे प्रवेश के समय तत्त्वमसि का अथवा सोऽहं का मन्त्र-प्रयोग होता है।

नमो अरिहंताण, मन्त्र से श्री अरिहंत परमात्मा की चारों निक्षेपो से नवो प्रकार की भक्ति होने के बाद उसके फलस्वरूप श्री अरिहंत परमात्मा के मुखकमल से तत्त्वमसि वाक्य का श्रवण करते हुए अपनी आत्मा श्री अरिहंत स्वरूप है ऐसा स्वरूपानुसधान कर अर्हमय अपनी आत्मा का ध्यान करना चाहिये। यह ध्यान समस्त पदार्थों की सिद्धि करवाने वाला है।

पाप नाशक एवं मंगलोत्पादक मन्त्र

नमो अरिहंताण। श्री अरिहंतो को किया हुआ नमस्कार सभी पापो का नाशक है तथा सभी मगलो का उत्पादक है। उसका मुख्य कारण श्री अरिहंतो का केवल-ज्ञानमय स्वरूप है। ज्ञानस्वरूप रागादि पापो का नाशक है तथा मैत्र्यादि भावो का उत्पादक है। ज्ञानस्वरूप मे समरता होने के कारण वह हर्ष, शोक तथा शत्रुमित्र भाव से परे है। हर्ष शोक का मूल सुखदु ख का द्वन्द्व है तथा रागद्वेष का मूल शत्रुमित्रभाव की वृत्ति है। ज्ञानचेतना सत्ता से सभी मे समान-भाव से वर्तित होने से, उसी मे रमण करने वाले श्री अरिहंतादि को किया हुआ नमस्कार कषाय भाव तथा विषय भाव को

दूर कर लेता है। कषाय भाव मुख्यत जीव-सृष्टि के प्रति तथा विषय भाव निर्जीव-सृष्टि के प्रति होता है। ज्ञानभाव से सचराचर विश्व के ज्ञाता-द्रष्टा परमात्मा को किया हुआ नमस्कार अपनी ज्ञान चेतना को जाग्रत कर लेता है अर्थात् जव तक ज्ञान चेतना सम्पूर्ण रूप से आविर्भूत नही होती तव तक मात्र समता रूप ज्ञानसरोवर मे अवगाहन करते परमेष्ठियों को वार-वार आदरपूर्वक नमन आवश्यक है। यह नमन ज्ञान चेतना मे परिणाम रूप वनकर, जिनको नमस्कार किया जाता है उस परमेष्ठि पद की प्राप्ति करवाता है।

परमात्मा का सम्मान परमात्मपद प्रदायक होने से उससे कोई बडा शुभ कर्म नही। जो कर्म का फल निष्कर्म परम पद प्राप्त करवाता है वही कर्म सर्वश्रेष्ठ कर्म है ऐसा मानने वाले महापुरुष परमेष्ठि-नमस्कार को परम कर्तव्य समझते है। परमेष्ठि-नमस्कार प्रथम तो अभिमान रूपी पाप का नाश करता है एव फिर नम्रता गुण रूपी परम मगल को प्रदान करता है। तत्पश्चात् इन दोनो के परिणाम स्वरूप अर्थात् अहकार के नाश एव नम्रता गुण के लाभ से जीव स्वय शिव-स्वरूप वन जाता है। अहकार के नाश से कषाय का नाश एव नम्रता के लाभ से सर्वश्रेष्ठ विषय (धर्म मगल) का लाभ होता है। उससे तुच्छ विषयो के प्रति आसक्ति छूट जाती है। विषयो की आसक्ति छूट जाने से कषाय की उत्पत्ति भी रुक जाती है। जिसके फलस्वरूप अप्रमाद एव अकषाय गुण की उत्पत्ति होने से आत्मा का शुद्ध निरावरण ज्ञानानन्द स्वरूप प्रकटित हो जाता है।

सुख दुःख ज्ञाता एवं राग द्वेष का द्रष्टा

प्रभु को सर्वस्व का दान करने से प्रभु अपने सर्वस्व का दान करते हैं। जिसके पास जो होता है वह वही देता है इस नियम

से नमस्कार करने वाला अपने मन वचन काया को प्रभु को सोंपता है। उसके बदले मे नमस्कार करने वाले को प्रभु ज्ञान दर्शन-चरित्र स्वरूप परमात्मपद को अर्पित करते हैं। जगत मे सर्वश्रेष्ठ दान परमात्मा का दान है। परमात्मा को नमस्कार करने वाला स्वय उस दान को प्राप्त करने का अधिकारी बनता है नमस्कार करने से अधिकारी बने उस जीव को परमात्मा अपने पद को ही सोप देते हैं। भक्त 'नमो अरिहंताण' बोलता है। उसके बदले मे भगवान, भक्त को 'तत्त्वमसि' कह कर 'तू ही भगवान है' ऐसा वचन देते हैं।

सुख दु ख का ज्ञाता एव राग द्वेष का द्रष्टा जो हो सकता है वह स्वय अशत भगवान है क्योकि उसकी वह साधना ही कालक्रम से साधक को केवलज्ञान एव केवलदर्शन प्रदान करने वाली होती है। केवलज्ञान गुण एव केवलदर्शन गुण के अधिकारी होने के लिए द्रष्टा भाव एव ज्ञाता भाव समायोजित करना सीखना चाहिये।

सुख दु ख कर्म के फल हैं एव राग द्वेष स्वयं भावकर्म-स्वरूप हैं। भाव कर्म का कर्तृत्व एवं कर्म फल का भोक्तृत्व छोडकर जीव जब उसका ज्ञातृत्व एवं द्रष्टत्व मात्र अपने मे स्थिर करता है तब वह निश्चय तत्त्व का ज्ञाता बनकर मोक्ष मार्ग में प्रयाण प्रारम्भ करता है। ज्ञातृत्व-द्रष्टृत्व भाव जब परिपक्व वनते हैं तब वह जीव योगशिखर पर आरूढ होकर मोक्ष के सुख को सिद्ध करता है।

भक्ति एवं मैत्री का महामन्त्र

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः

इस सूत्र मे सम्यक् दर्शन का सक्षिप्त अर्थ जिन भक्ति एवं जीव मैत्री है। सम्यक् ज्ञान का संक्षिप्त अर्थ जिन-स्वरूप ही

निज स्वरूप है एव निज स्वरूप ही जिनस्वरूप है। जिनभक्ति से विषय की विरक्ति एवं जीव-मैत्री से कषाय के त्याग को भी सम्यक् चारित्र का संक्षिप्त अर्थ कहा जा सकता है।

'नमो अरिहंताणं', श्री अरिहंतो की भक्ति जिस किसी प्रकार से हो वह सब नमस्कार रूप है। उस नमस्कार का फल श्री अरिहंत भगवान की ओर से 'तत्त्वमसि' जैसे उपदेश के रूप मे मिलता है। जिस अरिहंत स्वरूप की तू भक्ति करता है, वह तू स्वय है ऐसा अन्त मे निश्चय होता है। वही भक्ति का पारमार्थिक फल है। 'नमो अरिहंताण', मित्रता का महामन्त्र है एव भक्ति का भी महामन्त्र है। श्री अरिहंत मैत्रीभाव से अरि-भाव को—शत्रुभाव को मारने वाले है, उनको किया गया नमस्कार मैत्री का महामन्त्र बन जाता है। अरिह का अर्थ है शुद्ध आत्मा। उनको नमस्कार होने से वह भक्ति का महामत्र बन जाता है। भक्ति एव मैत्री परस्पर अविनाभावी है। एक के विना दूसरे का अस्तित्व असम्भव है।

आत्मस्वरूप की भक्ति तभी पूर्ण मानी जाती है जब साधारण एव निरावरण दोनो प्रकार की आत्माओ के ऊपर स्नेहभाव उत्पन्न होता है। निरावरण स्वरूप के प्रति स्नेह ही प्रमोद एव साधारण स्वरूप के प्रति स्नेह ही करुणा-माध्यस्थ्य है। यदि करुणा-माध्यस्थ्य नही हो तो प्रमोद भी सच्चा नही होता है। यदि प्रमोद नही हो तो करुणा-माध्यस्थ्य भी सच्चा नही। जीवतत्त्व की यही सच्ची उपलब्धि है कि उसमे जीव के दु ख के प्रति सहानुभूति एव करुणा के समान ही उसके सुख के प्रति हर्ष एव प्रमोद होने चाहिए। इस प्रकार भक्ति एव मैत्री दोनो को एक साथ प्रकटित करने वाला मन्त्र श्री नमस्कार महामन्त्र है।

प्रथमपद में समग्र मोक्षमार्ग

मैत्री एव भक्ति सम्यग्दर्शन के लक्षण है। उनके पीछे सम्यक्ज्ञान होना आवश्यक है। वह ज्ञान एकत्व का है। जीव, जगत् एव जगदीश्वर की एकता का ज्ञान ही सच्ची भक्ति एव मित्रता को प्रकट कर सकता है। यह एकता, गुण, जाति एव स्वभाव से है। सजातीय एकता के सम्बन्ध का ज्ञान भक्तिप्रेरक एव मैत्रीप्रेरक होता है अत वह सम्यग् ज्ञान है। जहाँ सम्यग् ज्ञान एव सम्यग्दर्शन होता है, अविनाभावरूप से चारित्र वहाँ निश्चय रूप से रहेगा। ज्ञान और दर्शन तभी सत्य माने जाते हैं कि जब वे जीवन मे क्रियान्वित हो। उस निर्मल आचरण का नाम ही चारित्र है। उस चारित्र के दो प्रकार है एक प्रवृत्ति-निवृत्तिरूप एव दूसरा स्वभावरमणतारूप। स्वभावरमणतारूप चारित्र तो व्यवहारचारित्र का फल है। हिंसादि आस्रवो से निवृत्ति एव क्षमादि धर्मो मे प्रवृत्ति ही व्यवहारचारित्र है। मैत्री से हिंसादि का निरोध होता है एव भक्ति से स्वरुपरमणता विकसित होती है। कषाय के अभाव को लाने में मैत्री ही मुख्य है एव भक्ति ही मुख्यत विषयासक्ति को हटाने वाली है। भक्ति का विषय सर्वश्रेष्ठ परमात्मतत्त्व है अत भक्ति के प्रभाव से तुच्छ विषयो का आकर्षण अपने आप चला जाता है। विषय कषाय को जीतने वाली आत्मा स्वय ही मोक्ष है। भक्ति तथा मैत्री उसके साधन है। उनको विकसित करने वाला मन्त्र नवकार अथवा उसका प्रथमपद है। अत श्री नमस्कार मन्त्र मे रत्नत्रयी स्थित है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आत्मा के तीन मुख्य गुण है। श्री अरिहतो को नमस्कार ज्ञानादि तीनो गुणो को विकसित करता है क्योकि उस मन्त्र से भक्ति तथा मैत्री साक्षात् पुष्ट होती है, चैतन्य के साथ वह एकता का ज्ञान करवाता है तथा विषय-कषाय

की परिणति से आत्मा को छुडाते है। विषयो मे सर्वश्रेष्ठ विषय श्री अरिहंत है। उनके प्रति व्यक्त आदर दूसरे विषयो की तुच्छता का भाव कराता है। जीवो के प्रति अमैत्री ही कषायो का मूल है। श्री अरिहतो को किया हुआ नमस्कार मैत्री सिखाता है जिससे कषाय निर्मूल होते है। विषय-कषाय से युक्त आत्मा स्वय चारित्र रूप है। इस प्रकार सम्यक्-दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप रत्नत्रयी, जिसे मोक्षमार्ग कहा जाता है, वह, नवकार के प्रथम पद मे ही सगृहीत है। इससे उसके आराधक का मोक्ष रूपी ध्येय सिद्ध होता है।

सात धातु एवं दश प्राण

नमस्कार कर जो श्री अरिहत की भक्ति करता है वह श्री अरिहत परमात्मा से 'वह तू ही है' (तत्त्वमसि) ऐसा अनुग्रह प्राप्त करता है। अरिहंत तू स्वय है ऐसा आशीर्वाद प्राप्त करने हेतु श्री अरिहतो की भक्ति अनिवार्य है। जिसकी भक्ति की जाती है उसका स्वरूप भक्त मे प्रकट होता है। श्री अरिहत देव की भक्ति से आत्मा मे प्रच्छन्न रूप से स्थित अरिहंत स्वरूप पहले मन-बुद्धि के समक्ष प्रकट होता है। मन और बुद्धि को श्री अरिहत के ध्यान मे पिरोने से उन दोनो के समक्ष भक्त मे निहित श्री अरिहत-स्वरूप प्रत्यक्ष हो जाता है। श्री अरिहत की भक्ति का यह प्रभाव है। अत श्री अरिहत की भक्ति मन-वचन-काया से करने, करवाने एवं अनुमोदना से भेदित करने के लिए प्रयत्न करना चाहिये। वही प्रयत्न करने योग्य है जिसमे सातो धातु भेदित हो जायें एवं दशो प्राण उसमे गुथ जाय। जब शरीर रोमाञ्चित हो जाय एव नेत्रो में हर्ष के अश्रुओ की धारा बहने लगे तभी समझना चाहिए कि श्री अरिहंत की भक्ति में सातो धातु एव दशो प्राण ओतप्रोत

हो गए हैं। इसीलिए त्रिकरण योग से श्री अरिहंत की भक्ति करने का विधान है। जव तीनो योग एव तीनो करण श्री अरिहत के ध्यान मे पिरो जाय तव अन्त.करण निर्मल हो जाता है एव निर्मल अन्त.करण मे अरिहंत तुल्य आत्मा का शुद्धस्वरूप प्रतिविम्बित होता है।

परमात्मा — समापत्ति

विषय की समापत्ति अर्थात् तीन करण से-तीन योग से होने वाला विषय का ध्यान आत्मा को तद्रूप वनाता है, तो आत्मा (सब्जेक्ट) को समापत्ति अर्थात् तीनकरण-तीन योग से होने वाला शुद्धात्मा का ध्यान आत्मा को परमात्मा स्वरूप बनाता है। विहित अनुष्ठान को भी शास्त्रोक्त विधानानुसार करने से परमात्मा के साथ समापत्ति का कारण वनता है क्योकि शास्त्रोक्त अनुष्ठान करते समय शास्त्र-कथक शास्त्रकारो पर भी वहुमान गर्भित अन्तरग प्रीति होती है। वह प्रीति परमात्मा-समापत्ति का कारण वनती है। विहित अनुष्ठान द्वारा होने वाला परमात्म स्मरण परमात्म-समापत्ति का कारण होता है क्योंकि वह स्मरण वहुमान गर्भित होता है। भगवान की आज्ञा का आराधन एक प्रकार से वहुमान गर्भित परमात्म-स्मरण ही है। उससे भगवान का नाम ग्रहण एव प्रतिमा पूजन भी भगवान की आज्ञा के आराधनरूप मे करणीय है। आज्ञा के आराधन मे आज्ञाकारक का वहुमान गर्भित स्मरण रहता है। अत वह समापत्ति का सरल साधन वनता है। भगवान के स्मरण को एव क्लिष्ट कर्म को सहअनवस्थान विरोध है। जहाँ वहुमान गर्भित भगवत्स्मरण होता है वहाँ ससार भ्रमण के कारण भूत क्लिष्ट कर्म टिक नही सकते। भगवत्स्मरण मिथ्या मोह का नाश कर आत्मा के शुद्ध स्वरूप के साथ एकता को पैदा करवाता है।

मन्त्रात्मक दो पद

नमामि सव्व-जिणाणं ।

खमामि सव्व-जीवाणं ।।

भावार्थ—जिनस्वरूप प्राप्त हुए सभी को मैं नमस्कार करता हू क्योकि उनकी तरफ से मुझे अनुग्रह प्राप्त होता है कि जिस अनुग्रह से मैं मेरे जिनस्वरूप को प्राप्त करता हूं। जिन स्वरूप को प्राप्त करने मे मुझसे होते प्रमाद, अज्ञान एव मिथ्यात्व को मैं निन्दित करता हू। मेरे उस अपराध हेतु सभी जीवो से क्षमा मांगता हू। सभी जीवो को जिनस्वरूप की प्राप्ति हेतु आलम्बन रूप होने में होते विलम्ब एवं विघ्नरूप मेरे अपराधो के लिए मैं क्षमा मांगता हूं। सभी जीवो! मेरे उन अपराधो को क्षमा करो, मुझे क्षमादान दो।

इस प्रकार अर्थभावनापूर्वक इन दो पदो के ध्यान से एव स्मरण से मेरी आत्मा को मैं शुद्ध-निर्मल करता हू। रागादि से भिन्न एव ज्ञानादि से अभिन्न मेरे शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति हेतु मन्त्रस्वरूप इन दो पदो का मैं निरन्तर भाव से स्मरण करता हूं।

नमामि सव्व जिणाणं

इस मन्त्र से सर्व उपकारियो को नमस्कार है। सबसे श्रेष्ठ उपकार "द्रव्यतया परमात्मा एक जीवात्मा" अर्थात् द्रव्य से परमात्मा ही जीवात्मा है। ऐसा ज्ञान प्रदान करने वालो का है। सभी जिन जीव मात्र को जिनस्वरूप देखते हैं, अजिन-स्वरूप को देखते हुए भी नही देखने के बराबर करते हैं एव जिनस्वरूप को आगे कर उत्तेजना प्रदान करते हैं। अत वे सर्वश्रेष्ठ उपकार कर रहे हैं। उनको किया हुआ नमस्कार कृतज्ञतागुण एवं ज्ञानगुण दोनो को विकसित करता है।

खमामि सव्व जीवाणं

सभी जीवो मे सत्तारूप में जिनस्वरूप होते हुए भी उसे स्वरूप मे नही देखने रूप अपराध हेतु मैं क्षमायाचना करता हूँ। उन अपराधो हेतु क्षमायाचना करने से उस स्वरूप को देखने वाले उपकारियो को किया जाने वाला नमस्कार तात्त्विक होता है।

नमामि सव्व जिणाणं। खमामि सव्व-जीवाणं।

शब्दार्थ–सभी जिनो को मैं नमस्कार करता हूँ सभी जीवो से मैं क्षमायाचना करता हूँ।

भावार्थ-नमस्कार करता हूँ। अर्थात् उनके उपकार को स्वीकार करता हूँ। क्षमायाचना करता हू अर्थात् मेरे अपकार को स्वीकार करता हूँ।

मुझ पर हुए, होरहे एव होने वाले सभी उपकारियो के उपकार को मैं कृतज्ञभाव से स्वीकार करता हूँ। मुझ से हुए, हो रहे तथा होने वाले सभी अपकारो को मैं सरलभाव से स्वीकार करता हूँ एव फिर नही करने के भाव से क्षमायाचना करता हूँ। बडे से बड़ा उपकार उनका है जो अपने जिनस्वरूप को देख रहे हैं तथा उसकी प्राप्ति तक अपने अपराधो को क्षमा कर रहे हैं। उनकी करुणा, उनकी मैत्री, उनका प्रमोद तथा उनका माध्यस्थ्य मेरे जिनस्वरूप को प्राप्ति मे उपकारक है। इसलिए मैं उनकी स्तुति करता हूँ तथा मुझ मे सभी जीवो के प्रति चारो भाव प्रकटित हो ऐसी प्रार्थना करता हूँ। उससे विपरीत मेरे भावो की मैं निन्दा करता हूँ, गर्हणा करता हूँ एवं सभी जीवो के समक्ष तदर्थ क्षमा मांगता हूँ। सभी जीवो के समक्ष उनके प्रति आचरित अपराधो हेतु क्षमायाचना करता हूँ। सभी जीवो के प्रच्छन्न जिनस्वरूप को देखकर उनके प्रति मैत्री, प्रमोद, कारुण्य एव माध्यस्थ्य भाव को विकसित करता हूँ।

कृतज्ञता एवं परोपकार की करणीय भाव से स्वीकृति ऋणमुक्ति निष्पन्न करती है। उपकारी के प्रति कृतज्ञता का भाव तथा अपकारी के प्रति भी उपकार करने का भाव आए बिना दोनो ऋणो से मुक्ति असम्भव है। एक ऋण उपकार लेने से होता है। दूसरा ऋण अपकार करने से होता। अतः उभय ऋण की मुक्ति हेतु नमामि तथा खपामि दोनो भावो को आराधन की समान आवश्यकता है।

नमो पद का महत्त्व

नमो पद का एक अर्थ द्रव्य भाव सकोच है। द्रव्य काया एवं वाणी का तथा भाव से मन तथा बुद्धि का बाह्य पदार्थों मे से सकोच साधकर उसे आत्माभिमुख वनाकर सभी महा-पुरुष परम पद को प्राप्त हुए हैं अथवा दूसरे प्रकार से द्रव्य सकोच अर्थात् शरीरादि बाह्य वस्तु के मद का त्याग तथा भाव संकोच अर्थात् मन, बुद्धि आदि के अभिमान का त्याग। इस प्रकार मद तथा मान का त्याग होने से वृत्ति अन्तर्मुखी होती है तथा उससे सर्वश्रेष्ठ वस्तुओ का ज्ञान एवं ध्यान फलीभूत होता है। ज्ञान का फल समता-संवर है तथा ध्यान का फल निरोध-निर्जरा है। वह उसी का वरण करता है जिसमे मन में काया तथा उपलक्षण से पुद्‌गल के सयोग जनित सर्व औदयिक भावो का अभिमान गल गया हो। साथ ही मन एव बुद्धि तथा उपलक्षण से सर्व प्रकार के क्षायोपशमिक भावो का भी अहंकार चला गया हो। इससे यह सिद्ध हुआ कि जाति, कुल, रूप, वल, ऐश्वर्य एवं वाल्लभ्यादि औदयिक भावो के मद का त्याग ही मुख्य रूप से द्रव्य-संकोच है तथा तप श्रुत, ज्ञान एव बुद्धि आदि क्षयोपशम भावो के मान का त्याग ही मुख्यरूप से भावसंकोच है। द्रव्य तथा भाव अथवा वाह्य एव अभ्यन्तर

इन दोनो प्रकार के मद तथा मान के त्याग का प्रणिधान हो द्रव्य-भाव-संकोच है एव वही नमस्कार का मुख्य प्रयोजन है। ऐसा नमस्कार भाव अथवा उसका लक्ष्य, धर्म के प्रारम्भ मे अतीव आवश्यक है।

नमो मन्त्र से अहंता—ममता का त्याग

अहता अथवा ममता ससार मे भटकाने वाली वस्तु है। अहन्ता का अर्थ है 'कर्म का कर्ता मात्र मैं ही हूँ' ऐसी बुद्धि। ममता का अर्थ है 'कर्मफल का अधिकारी मैं हूँ' ऐसी बुद्धि। इन दोनो को निवारने हेतु कर्म का कर्त्ता केवल मैं नही, किन्तु काल, स्वभाव, भवितव्यता एव पूर्व कृत कर्म वगैरह के सहयोग से कर्म हो रहा है ऐसा विचार करना एव कर्म फल भी सब के सहयोग का परिणाम है, उस पर मात्र मेरे अकेले का अधिकार नही, ऐसा विचार करना। नमस्कार के आराधक को अपने सभी कर्म एव उनके फल, जिनको नमस्कार करता है, उन नमस्कार्यों को समर्पित कर देना चाहिए क्योंकि निमित्त कर्त्तव्य उनका है। उनके अवलम्बन से ही कर्म एव उसके फल मे श्रेष्ठता आती है। प्रत्येक शुभ कर्म एवं उसका श्रेष्ठ फल जिसके अवलम्बन से शुभ एव श्रेष्ठ बनता है उनके स्वामीत्व का है, ऐसा व्यवहार नय कहता है। इससे दोनो पर स्वामीत्व उनका है ऐसी वृत्ति धारण करनी चाहिये। उसके परिणाम-स्वरूप अहत्व-ममत्व गल जाता है एव नम्रता, निरभिमानता, सरलता, सन्तोष आदि गुणो की उत्पत्ति होती है तथा भक्ति के सुमधुर फलो का अधिकारी बन जाता है।

अव्यय पद

व्याकरण शास्त्र के नियमानुसार नमो अव्यय पद है। मोक्ष भी अव्यय पद है। इसमे "नमो" अव्यय, मोक्ष पद का बीज

भी है। अव्ययपद ही ज्ञातव्य ध्यातव्य एवं प्राप्तव्य है। वाक्य मे कर्त्ता, कर्म एव क्रिया तीन होते है। यहाँ नमो अव्यय होने से उसमे मात्र क्रिया है पर कर्त्ता या कर्म नही। साधना के समय जब कर्त्ता एव कर्म गौण होते है तथा उपयोग मे मात्र क्रिया रहती है तभी साधना शुद्ध होती है। नमो पद का उच्चारण ही क्रियावाचक हो किसी श्रेष्ठ तत्त्व का सीधा भान कराता है अथवा ध्याता, ध्येय तथा ध्यान, इस त्रिपुटी मे से जब ध्याता का विस्मरण हो जाता है तब मनोवृत्ति केवल ध्येयाकार बनती है, तथा ध्यान यथार्थ हुआ माना जाता है। नमस्कार की क्रिया मे भी जब कर्त्ता तथा कर्म का विस्मरण हो केवल क्रिया रहती है तभी साधना शुद्ध हुई गिनी जाती है। फिर नमो पद का उच्चारण ही वैखरीवाणी का प्रयोग है अत वह क्रियायोग है। अर्थ का भावन ही मध्यमावाणी हो भक्तियोग है। नमस्कार की आन्तरक्रिया पश्यन्ती रूप है अत. वह ज्ञानयोग है। इस प्रकार कर्म, भक्ति तथा ज्ञान इन तीनो योगो की साधना नमो पद मे निहित है।

निर्मल वासना

नमस्कार की साधना से मलिन वासनाओ का त्याग होता है, निर्मल वासना का स्वीकरण होता है तथा अन्त मे चिन्मात्र वासना अवशिष्ट रहती है। मलिन वासना दो प्रकार की होती है—एक बाह्य है तथा दूसरी आन्तर। विषयवासना बाह्य तथा मानसवासना आभ्यन्तरिक है। विपयवासना स्थूल है तो मानसवासना सूक्ष्म है। विपयो के भोग काल मे उत्पन्न-हुए सस्कार, विपयवासना हे तथा विपयो की कामना के काल मे उद्भूत सस्कार, मानसवासना है। दूसरी प्रकार से लोकवासना अथवा देहवासना ही विपयवासना है तथा दम्भ, दर्पादि ही मानसवामना है। नमस्कार भाव तथा नमस्कार की क्रिया मे बाह्य-आन्तर उभय प्रकार की मलिन वासना का

नाश होता है तथा मैत्री, मुदितादि निर्मल भावनाएं प्रकट होती है। चिन्मात्र वासना का अर्थ है मन, वुद्धि आदि चैतन्य का शुभ व्यापार। उससे कार्याकार्य के विवेकरूपी सद्विचार जागते है तथा अन्त मे उसका भी परमात्म-साक्षात्कार मे लय हो जाता है। सद्विचार तथा सद्विवेक साधन रूप 'अपर' ज्ञान है तथा आत्मसाक्षात्कार-परमात्मसाक्षात्कार साध्यरूप 'पर' ज्ञान है। साक्षात् या परम्परा से उभय प्रकार के ज्ञान की प्राप्ति नमस्कार भाव तथा नमस्कार की क्रिया से सिद्ध होती है। इस सम्वन्ध मे कहा गया है कि--

वन्धो हि वासनावन्धो, मोक्ष' स्याद् वासनाक्षय ।
वासनास्त्व परित्यज्य, मोक्षार्थित्वमपि त्यज ॥

अर्थ--वासना का वन्ध ही वन्ध है। वासना का क्षय ही मोक्ष है। वासनाओ का त्याग कर तू मोक्षार्थिपन का भी त्याग कर अर्थात् आत्म साक्षात्कार को प्राप्त कर।

परमेष्ठि नमस्कार से समत्व की सिद्धि

चौदहपूर्व तथा द्वादशागी से अपने को जो अनेक प्रकार का प्रकाश मिलता है उनमे से एक प्रकाश यह है कि आत्म-दृष्टि से कोई जीव अपने से छोटा नही तथा देहदृष्टि से कोई जीव अपने से बडा नही है। कर्ममुक्त अवस्था सव जीवो को समान सुखदायक होती है। कर्मवद्ध अवस्था सवको समान कष्टदायक होती है क्योकि कर्मजनित सुख भी अन्त मे दु खदायक है। सभी जीवो के साथ अपनी तुल्यता का इस प्रकार भावन तथा उससे प्राप्त होता अपूर्व समत्व ही मोक्ष का असाधारण कारण है। यह भावना आठो प्रकार के मद को, चारो प्रकार के कपाय को तथा पाँचो प्रकार की इन्द्रियो को विजित कराने वाली होती है। इससे परम पुरुपार्थ की सिद्धि होती है। श्री पचपरमेष्ठि नमस्कार इस मे भावना से

श्री सिद्धि पद को प्राप्त उन्नत श्री अरिहंतो, वर्तमान के उत्कृष्ट १७० तथा जघन्य २० श्री अरिहंतो तथा भविष्यकाल के अनन्त श्री अरिहंतो को नमस्कार होता है। साथ ही अतीतकाल के अनन्त सिद्धो को वर्तमान काल के एक समय में होने वाले उत्कृष्ट १०८ सिद्धो को तथा भविष्य के अनन्त सिद्धो को नमस्कार होता है। वैसे ही अतीतकाल के अनन्त, सिद्धो को वर्तमान काल के सभी क्षेत्रो के केवल ज्ञानियो तथा छद्मस्थ मुनियो तथा भविष्य काल के अनन्त आचार्यो, उपाध्यायो आदि साधु भगवान को नमस्कार होता है। यह नमस्कार परमेष्ठियों में स्थित समत्व को उद्देशित होने से समत्व की सिद्धि करवाता है।

पाँच प्रकार के गुरु

श्री नमस्कार मंत्र में पाँच प्रकार के गुरु समाविष्ट हैं। श्री अरिहंत मार्गदर्शक होने से प्रेरक गुरु हैं, श्री सिद्ध अविनाशी पद प्राप्त होने से सूचक गुरु हैं। श्री आचार्य अर्थोपदेशक होने से वोधक गुरु हैं श्री उपाध्याय सूत्र के दाता होने से वाचक गुरु हैं एव श्री साधु मोक्ष मार्ग मे सहायक होने से सहायक गुरु हैं। पंच गुरुओ को नमस्कार रूप होने से श्री नमस्कार मंत्र को गुरु मत्र अथवा पचमंगल भी कहते हैं। यह पंचमगल सूत्ररूप होते हुए भी वार-वार मनन करने योग्य होने से, साथ ही उसके सम्यक् आराधन द्वारा चमत्कारिक परिणाम आते होने से उसकी प्रसिद्धि लोक मे मंत्र रूप मे हुई है। पांच ज्ञान एवं चार शरण की तरह वे भाव मंगल हैं। द्रव्य-पाप की विशेषता को जानने वाला जीव इस मंत्र का विशेष रूप से अधिकारी होता है।

ध्यान एवं लेश्या

समस्त इन्द्रियो को भ्रूमध्य आदि स्थानो मे केन्द्रित करके जो चिन्तन होता है, उसे ध्यान कहते हैं। ध्यान के दूसरे

भा कई अर्थ है। श्रुतज्ञान को भी शुभ ध्यान कहा जाता है। चिन्ता तथा भावनापूर्वक स्थिर अध्यवसाय को भी ध्यान कहा गया है। निराकार निश्चल बुद्धि, एक प्रत्ययसन्तति, सजातीय प्रत्यय की धारा, परिस्पन्दवर्जित एकाग्र चिन्तानिरोध आदि उनके ध्यान के अनेक पर्याय कहे गये है उन सबका सग्रह परमेष्ठि ध्यान मे समझना चाहिये। कमलवन्ध से, त्रिकरणशुद्धि से तथा विन्दुनवक से भी नमस्कार का ध्यान हो सकता है। नमस्कार के ध्यान का फल लेश्याविशुद्धि याने माया, मिथ्यात्व तथा निदान, इन तीनो शल्य से रहित चित्त के परिणाम है। श्रद्धालु आत्मा जो कोई क्रिया करती है वह दूसरो कोनीचे गिराने के लिए या अपने उत्कर्ष के लिए नही होती। जिसमे मुख्यत परापकर्ष की वृत्ति होती है वह माया शल्य है एव जिसमे मुख्यत- स्वोत्कर्ष साधने का मनोरथ हो वह निदान शल्य है। जिसमे स्वमति की कल्पना मुख्य हो वह मिथ्यात्व शल्य है। क्रिया की सफलता हेतु प्रत्येक क्रिया माया, मिथ्यात्व तथा निदान--इन तीन शल्य से रहित होनी चाहिये अर्थात् निर्दम्भ, नि.शंक तथा निराशस भाव से होनी चाहिये। श्री नमस्कार का ध्येयनिष्ठ आराधन जीव को निर्दम्भ, नि शक तथा निष्काम बनाता है क्योकि उसमे ममत्व-भावका शोषण तथा समत्व भाव का पोषण होता है।

लेश्याविशुद्धि एवं स्नेह-परिणाम

श्री नमस्कार मन्त्र के आराधन से दूसरे भी तीन गुण पुष्ट होते है। वे है क्षमता, दमता, तथा शमता। क्षमता अर्थात् क्रोधरहितता, दमता अर्थात् कामरहितता तथा शमता अर्थात् लोभरहितता। दूसरो को अपने समान देखने वाला किस पर क्रोध करे ? दूसरे को पीडा हो उस प्रकार के काम अथवा लोभ का सेवन भी वह किस प्रकार करे ? दूसरे के

दुःख को अपना दुःख मानने वाले तथा दूसरे के सुख को अपने सुख जितनी ही कीमत आँकने वाले में काम, क्रोध तथा लोभ ये तीनो दोष लुप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार माया, मिथ्यात्व तथा निदान ये तीनो शल्य भी चले जाते है। श्री नमस्कार मन्त्र से होती लेश्याविशुद्धि का यह फल है। 'लेश्याविशुद्धि' तथा 'स्नेह का परिणाम' एक दृष्टि से समान अर्थ के वाचक शब्द हैं। श्री नमस्कार मन्त्र समस्त जीव-राशि पर स्नेह का परिणाम विकसाता है, साथ ही इस स्नेह के परिणाम में काम क्रोध एवं लोभ ये तीनो दोष तथा माया, मिथ्यात्व एवं निदान ये तीनो शल्य पानी से भरे कच्ची मिट्टी के घड़े की तरह गल जाते हैं तथा आत्मा क्षान्त, दान्त एव शान्त तथा निष्काम, निर्दम्भ तथा निःशल्य हो क्रिया के उत्कृष्ट फल को प्राप्त कर सकती है।

कृतज्ञता गुण का विकास

नवकार चौदह पूर्व का सार है एवं समस्त श्रुत ज्ञान का रहस्य है। उसका एक कारण नमस्कार से कृतज्ञता गुण का समायोजन होता है। कृतज्ञता गुण सभी सद्गुणो का मूल है। उसका शिक्षण नमस्कार से मिलता है। कृतज्ञता गुण का उत्पादक परोपकार गुण है। परोपकार गुण सूर्य के स्थान पर है तो कृतज्ञता गुण चन्द्रमा के स्थान पर। जिससे उपकार होता है, उसके प्रति कृतज्ञ रहना ही धर्म का आधार है। ऐसा ज्ञान प्रारम्भ से ही देने हेतु श्री नमस्कार मत्र को मूल मत्र या महा मंत्र कहा है। नवकार विना तप, चारित्र एवं श्रुत निष्फल कहे गए हैं। इसका अर्थ कृतज्ञता भाव के विना समस्त आराधना अंकरहित शून्य जैसी है। सम्यक्त्व गुण भी कृतज्ञताभाव का सूचक है क्योकि उसमे देव तत्त्व, गुरुतत्त्व एवं धर्म तत्त्व के प्रति भक्ति है, नमस्कार है, श्रद्धागर्भित बहुमान

है तथा ये तीनो तत्त्व परम उपकारक है ऐसा हार्दिक स्वीकरण है। जिससे सभी कुछ शुभ मिला है, मिल रहा है तथा मिलने वाला है उसको याद करना तथा उसके प्रति नम्र भाव धारण करने का ही दूसरा नाम कृतज्ञता गुण है। कृतज्ञता गुण एक प्रकार की ऋण मुक्ति की भावना भी है। परोपकार गुण मुक्तिमार्ग मे ऋणमुक्ति की भावना से उत्पन्न हुआ शुभ भाव है। ऋणमुक्ति तथा कर्ममुक्ति एक ही सिक्के के दो पहलू है। अव्याबाध सुखस्वरूप मोक्ष मे देना ही है लेना कुछ भी नही है। ससार मे तो केवल लेना ही है पर देना कुछ भी नही। लेने की क्रिया मे से छूटने का उपाय, जहाँ तक कुछ भी लेना नही तथा केवल देना ही है वैसा मोक्ष प्राप्त करना है। उस मोक्ष को प्राप्त करने का अनन्य साधन एक नमस्कार भाव या कृतज्ञता गुण है। याग्य का नमस्कार करने वाले का विकास तथा नमस्कार नही करने वाले का विनाश ही इस ससार का अविचल नियम है। दान रुचि भी नमस्कार की ही एक रुचि है। नमस्कार सर्वश्रेष्ठ पुरुषो को एव सर्वश्रेष्ठ सद्‌गुणो को सर्वश्रेष्ठ दान है। दान रुचि के बिना दानादि गुण जैसे गुण नही बन सकते वैसे ही नमस्कार रुचि के विना पुण्य के कार्य भी पुण्यानुबन्धी पुण्य स्वरूप नही बन सकते हैं। नम्रता का मूल कृतज्ञता, कृतज्ञता का बीज परोपकार तथा परोपकार का बीज जगत-स्वभाव है। विश्व का धारण, पालन, पोषण परोपकार से ही हो रहा है। कोई भी क्षण ऐसा नहीं है कि जिसमे एक जीव को दूसरे जीव की तरफ से उपग्रह-उपकार न होता हो। इस सम्बन्ध मे कहा है कि—

तरुवर सरवर संतजन, चोथा वरसत मेह।
परमारथ के कारणे, चारों धरिया देह ॥

पिबन्ति नद्य स्वयमेव नाम्भ.,
स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः ।
नादन्ति सस्यानि खलु वारिवाहाः,
परोपकाराय सतां विभूतयः ।।२।।
परकार्याय पर्याप्ते, वर भस्म वर तृणम् ।
परोपकृतिमाधातु-मक्षमो न पुनः पुमान् ।।३।।
तथा–सूर्याचन्द्रमसौ व्योम्न, द्वौ नरौ भूषण भुव ।
उपकारे मतिर्यस्य, यश्च तं न विलुम्पति ।।४।।

नमस्कार में नम्रता

अहिंसादि धर्म मात्र का मूल नम्रता है। धर्म को सानुबन्ध बनाने वाला नमस्कार का भाव है। धर्म प्राप्त करने का पहला सोपान नम्र होना है। जो नम्र नही बन सकता है वह धर्म को पहिचान नही सकता है। धर्म को पहिचानने हेतु कर्म के स्वरूप को जानना चाहिए तथा जो कर्म के स्वरूप को जानता है वह अवश्य नम्र बनता है। नम्र बनकर सयमी होने वाली आत्मा आते कर्मो को रोकती है एव पुराने कर्मो को विखेरने का साधन तप है तथा वह उसे करने के लिए सदा उल्लसित रहता है। एक नमस्कार मे अहिंसा, सयम एव तप इन तीनो प्रकार के धर्म के अगो को सम्मिलित करने का सामर्थ्य है। धर्म करके जो गर्व करता है वह धर्म वास्तविक नही पर धर्म का आभास मात्र है। कर्म की भयानकता के ज्ञान से होती नम्रता ही वास्तविक नम्रता है। कर्म के स्वरूप का ज्ञान होते ही वह ज्ञान जीव को नम्र बना देता है। कर्म स्वरूप के ज्ञान विना कर्म कीच को निकालने या रोकने की वृत्ति हो नही सकती। नम्रता को पैदा करने वाला तत्वज्ञान यदि नही मिलता है तो आत्मा कर्म का क्षय करने वाले तात्त्विक धर्म को कैसे प्राप्त कर सकती है? अहिंसा, सयम तथा तपरूपी सत्य धर्म को प्राप्त करने हेतु कर्म की सत्ता बध, उदय तथा उदीरणादि को श्री सर्वज्ञ भगवान् से कहा है। उनको जानने से प्राप्त तात्त्विक नम्रता से सच्चे अहिंसादि धर्मो की प्राप्ति तथा पालन हो सकता है। विनय नमो का अर्थात् नम्रता का पर्याय है। अष्टकर्म विनयन-दूरीकरण विनय की शक्ति है। उसका अर्थ यह है कि अष्टकर्म के बन्ध मे मुख्य कारणभूत

अष्टमद है, उसका समूल नाश करने की शक्ति विनयगुण में है, नम्रवृत्ति मे है। मेरी आत्मा अनादि कर्म के सम्बन्ध से तुच्छ, क्षुद्र, परवश तथा पराधीन दशा मे है ऐसा ज्ञान भी जिन वचन द्वारा होने से जाति कुल, रूप, वल, लाभ, ऐश्वर्यादि कर्मकृत भावो का अभिमान गल जाता है तथा जीव मे सच्ची नम्रता आती है। अत धर्म को सानुवन्ध वनाने वाला नमस्कार भाव है यह वाक्य सत्य सिद्ध होता है। अष्टमद के कारणभूत अष्ट-कर्म, अष्टकर्म के कारणभूत चार कषाय, चार सज्ञा तथा पाँच विषय आदि से भयभीत जीव ही वास्तविक धर्म को प्राप्त करने का पात्र है। धर्म प्राप्त जीवो पर उसकी भक्ति तथा प्रमोद जाग्रत होता है तथा धर्म अप्राप्त जीवो के प्रति करुणा एव माध्यस्थ्य आता है। इन चार भावो रहित धर्मानुष्ठान मे किसी न किसी प्रकार का मद भाव छिपा हुआ है। अत. वह सानुवन्ध धर्म नही वनता है। धर्म को सानुबन्ध वनाने हेतु कर्म के विचार के साथ गुणादिको के प्रति प्रमोद तथा दु खादिको के प्रति करुणा आदि भावो की भी उतनी ही आवश्यकता है।

सर्वश्रेष्ठ महामन्त्र

जो तीनो भुवनो के लिए नमस्करणीय वने है, वे इसी आत्मदृष्टि भाव के स्पर्श से वने है कि उनसे छोटा कोई नही है। अत नमस्करणीयो को किया नमस्कार अपने हृदय मे सच्चा नमस्कार भाव लाता है। नमस्कार मन्त्र तभी प्रभावी वनता है जव यह समझा जाता है कि आत्मदृष्टि से अपने से कोई छोटा नही है। ऐसे भावनमस्कार को प्राप्त करके ही जीव मोक्ष गए हैं तथा जा रहे हैं। आत्मदृष्टि से मुझसे कोई छोटा नहा, क्योकि सभी आत्मस्वरूप से समान है। देहदृष्टि से मुझे से कोई मोटा नही, क्योकि कर्मकृत भाव सबके लिए समान हैं। कर्मकृत शुभ भी परिणाम दृष्टि से अशुभ अथवा विनश्वर है। कोई छोटा नही यह विचार गर्व को रोकता है तथा कोई बड़ा नही यह विचार दैन्य को रोकता है। दया धर्म की माता है तथा दान-पिता है। माया पाप की माता है तथा मान पिता। दान से मान का नाश होता है तथा दया से माया का नाश होता है। दान मे सर्वश्रेष्ठ दान सम्मान का दान है। श्री नमस्कार

मन्त्र से पच परमेष्ठियो का सम्मान होता है। अत' वह बडे से वड़ा दान है, तथा श्री नमस्कार मन्त्र से सभी दुःखी जीवो के दु.ख को दूर करने की बुद्धि उत्पन्न होती है। अत वह बडी से वडी दया तथा करुणा है। सर्वोत्कृष्ट दया तथा दान से माया तथा मान का नाश करन वाला होने से श्री नमस्कार मन्त्र जीवन मे उत्तम परिवर्तन लाने वाला श्रेष्ठ मन्त्र है।

त्रिकरण योग का हेतु

श्री अरिहत, आचार्य, उपाध्याय तथा माधु ये सभी सिद्ध अवस्था की पूर्व भूमिकाएँ हैं। इसीलिए वे परमेष्ठि कहलाते है तथा उनमे सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र एव तप की सर्वोत्कृष्ट वहाँ मम्पत्तियाँ वसती है। जहाँ चमत्कार से नमस्कार लोभवृत्ति नमस्कार से चमत्कार धर्मवृत्ति है। धर्म का मूल नमस्कार है है तथा धर्म का फल चित्त प्रसाद रूपी पुरस्कार है। धर्म का स्वरूप भावविशुद्धि है। नमस्कार का साक्षात् पुरस्कार चित्त प्रसाद है। चित्त प्रसाद का फल "आत्मीय ग्रह मोक्ष" है अर्थात् पौद्गलिक भावो मे ममत्व वुद्धि का नाश है। धर्म का कोई भी नियम तीन करण तथा तीन योग से ही पूर्ण वनता है। मन से करवाना तथा अनुमोदन करना विश्वहित चिन्तन के भाव के अर्न्तगत आ जाते है। विश्वहित चिन्तन का भाव श्री जिनेश्वरदेव का भाव होने से भव भ्रमण का नियमन करता है। अर्द्धपुद्गल परावर्त से अधिक भव भ्रमण नही होता है। ऐसा नियम मात्र ज्ञान या मात्र चारित्र की अपेक्षा नही रखता है पर श्री जिन वचन, श्री जिन विचार अथवा श्री जिन वर्तन पर आदर भाव की अपेक्षा रखता है। तीन करण एव तीन योग पूर्वक होती धर्म क्रिया विश्वहित चिन्तन का वरण करती हुई भव-भ्रमण को परिमित वनाती है। नमस्कार भी धर्म क्रिया है, अत त्रिकरण योग से करने का विधान है।

सच्ची मानवता

जिससे अधिक उपकार हो उसे नमस्कार करना मानवता है। मनुष्य को प्राप्त मन का वह श्रेष्ठ फल है। अत. उपकारियो को नमस्कार करना परम कर्त्तव्य है। जव अभौतिक चिन्मय-

पदार्थों से उभयलौकिक उपकार होता है तब भौतिक पदार्थों से होता उपकार केवल एकपक्षीय एव इहलौकिक ज्ञात होता है अत अभौतिक पदार्थ प्रथम नमस्कार के पात्र हे। शास्त्र कहते है कि जो दु ख मिला है वह अपनी अयोग्यता के मुकाबले थोडा हे ऐसा मानना सीखो एवं जो सुख मिला है वह अपनी योग्यता के मुकाबले अधिक है ऐसा मानना सीखो। पुण्य को दूसरो की सहायता के कारण हुआ मानना सीखो एव पाप का कारण अपने को मानना सीखो। पाप के प्रति पक्षपात एव पुण्य के प्रति अरुचि ही समस्त दु खो का मूल है एव उसका कारण कार्य कारण भाव के नियम का अविचार अथवा अज्ञान है। कार्य कारण के अनुरूप होता है। पाप परपीडा रूप है। अत उसका फल दु ख है एव पुण्य परपीडा परिहार रूप है अत उसका फल सुख है। सच्चा सुख मोक्ष मे है। पुण्य पाप से रहित अवस्था मे है। जिसको ऊर्ध्वगमन करना है उसे उच्च पदार्थो को नमस्कार करना सीखना चाहिए। उसी मे सच्ची मानवता है। जिस प्रकार नख से अगुली, वाल से सिर तथा वस्त्र से शरीर अधिक मूल्यवान है, वैसे ही शरीर से आत्मा का मूल्य अधिकतम है, ऐसा मानना सीखना चाहिए। धन ग्यारहवाँ प्राण है। उससे दश द्रव्य प्राणो की अधिकता स्वीकार करनी एवं द्रव्य प्राण से भाव प्राण की विशेषता-अधिकता स्वीकार करने मे ही अधिक विवेक है, विचार है एव सत्य का स्वीकार है। परमेष्ठि नमस्कार मे विवेक, विचार तथा सत्य का स्वीकार होने से मानवता की सफलता है।

श्री पंचपरमेष्ठिमय विश्व

श्री अरिहृत पचपरमेष्ठिमय है। श्री पचपरमेष्ठि की स्तुति ही श्री अरिहत की स्तुति है। श्री अरिहत मे अरिहृतपना तो है ही परन्तु उसके अतिरिक्त सिद्धपन भी है। अर्थ की देशना प्रदान करने वाले होने से आचार्यपन भी है। श्री गणधर भगवान् को त्रिपदी रूपी सूत्र का दान करने वाले होने से उपाध्यायपन भी है। कचनकामिनी के ससर्ग से अलिप्त, निर्विषय-चित्त वाले, निर्मम नि सग तथा अप्रमत्तभाव वाले

होने से साधुपन भी है। इस प्रकार पाँचो परमेष्ठिमय होने से श्री अरिहत की स्तुति श्री पचपरमेष्ठि की स्तुति रूप है एवं श्री पचपरमेष्ठि की स्तुति श्री अरिहत की स्तुति रूप है। श्री अरिहत मे पचपरमेष्ठि तथा श्री पचपरमेष्ठि मे अरिहत निहित है।

दूसरी प्रकार से श्री अरिहत विश्व की आत्मा है। समग्र विश्व उनकी आत्मा मे ज्ञानरूप, करुणा रूप, मैत्री रूप, प्रमोद रूप एव माध्यस्थ्य रूप मे स्थित है, प्रतिष्ठित है। विश्व श्री अरिहतरूप है क्योकि श्री अरिहतो की करुणा का विषय है, श्री अरिहतो के ज्ञान का ज्ञेय है तथा श्री अरिहतो के उपदेश अर्थात् आज्ञा का आलम्बन अथवा क्षेत्र है। इस प्रकार श्री अरिहत समग्र विश्वमय तथा समग्र विश्व श्री अरिहतमय है अर्थात् श्री पचपरमेष्ठि समग्र विश्वमय तथा समग्र विश्व श्री पचपरमेष्ठिमय है।

श्री पंचपरमेष्ठि का ध्यान

श्री पचपरमेष्ठि का ध्यान जब शब्द, अर्थ तथा ज्ञान से सकीर्ण होता है तब वह सविकल्प समाधि का कारण बनता है। इस प्रकार जब यह ध्यान देश, काल, जाति आदि से युक्त होता है तब भी यह सविकल्प समाधि बनता है। जब देश, काल, जाति आदि से शून्य केवल अर्थ मात्र निर्भास बनता है तब यदि वह स्थूल विषयक हो तो निर्विचार समाधि रूप वनता है ऐसा श्री पातजल योग दर्शन में वर्णित है।

स्थूल याने मनुष्यादि पर्यायरूप एवं सूक्ष्म याने शुद्ध आत्मस्वरूप समझना चाहिए। श्री जैन दर्शनानुसार पर्याय-युक्त स्थूल-सूक्ष्म द्रव्य का ध्यान सवितर्क-सविचार तथा पर्याय विनिर्मुक्त स्थूल-सूक्ष्म द्रव्य का ध्यान निर्वितर्क निर्विचार समाधि है अथवा अन्तरात्मा मे परमात्मा के गुणो का अभेद आरोप (समापत्ति) ही ध्यान का फल है तथा वह ससर्गारोपसे होता है। ससर्गारोप याने जिसके तात्त्विक अनन्त गुण आविर्भूत है उन सिद्धात्माओ के गुणो के विषय मे अन्तरात्मा का एकाग्र उपयोग। वह चचल चित्त वाले को इन्द्रिय निग्रह बिना नही होता है। इन्द्रियो का निग्रह श्री जिन

प्रतिमादि तथा सूत्र-स्वाध्यायादि के आलम्बन विना नही होता। अत तत्त्व की प्राप्ति मे सूत्र-स्वाध्याय तथा श्री जिन प्रतिमादि का आलम्बन भी प्रकृष्ट उपकारक है इस हेतु 'श्री उपमिति भव-प्रपच कथा' मे कहा गया है कि—

मूलोत्तरगुणाः सर्वे, सर्वा चेयं वहिष्क्रिया।
मुनीनां श्रावकाणां च ध्यानयोगार्थमीरिता' ॥१॥

अर्थ—साधुओ एव श्रावको के मूल उत्तरगुण तथा समस्त बाह्य क्रियाएँ ध्यानयोग के लिए वर्णित की गई है।

नवकार में भगवद्भक्ति

नवकार मे केवल वीरपूजा नही, परन्तु भगवद्भक्ति भी भरी हुई है। समस्त जीवलोक का कल्याण करना श्री परमेष्ठि भगवान का स्वभाव रूप बन गया है। उनका यह स्वभाव उनके नाम, आकृति, द्रव्य एवं भाव इन चारो निक्षेपो से आविर्भूत होता है। नवकार के प्रथम पाँच पदो मे स्थित पाँचो परमेष्ठि चारो निक्षेपो से तीनो काल मे एव चौदहो लोको मे अपने स्वभाव से ही सब का कल्याण सम्पादन कर रहे हैं। अन्तिम चार पदो मे उन श्री को नमस्कार करने वाले चारो गति के सम्यग्दृष्टि एव मार्गानुसारी जीव, 'ध्याता-ध्येयस्वरूप बनें' इस न्याय के आगम से अर्थात् ज्ञानोपयोग से भावनिक्षेप मे श्री पच परमेष्ठि रूप बनकर सकल पाप के विध्वसक तथा सकल मगल के उत्पादक बनते हैं। जो आगम से एव भावनिक्षेप से श्री अरिहत आदि स्वय ही परमेष्ठि है एव आगम से भाव-निक्षेप द्वारा उन श्री के ज्ञाता एव उन श्री के ध्यान मे उपयोगवान ध्याता भी हैं। नमस्कार की चूलिका मिलकर पाँच पद महाश्रुतस्कंध रूप है। इसका अर्थ यह हुआ कि नमस्कार्य, नमस्कर्ता एव नमस्कार्य मे हृदय मे ज्ञान तथा करुणा के विषयभूत समस्त जीवलोक श्री नमस्कार महामत्र रूपी श्रुतस्कध मे समाविष्ट हो जाते है। चौदह राज लोक तथा सचराचर सृष्टि को आवृत करता श्री नमस्कार महामत्र सर्वव्यापक है। समग्र विश्व के साथ विवेकपूर्वक एकतानता तथा एकरूपता समायोजित करने हेतु सरल से सरल साधन अर्थभावना पूर्वक होता श्री नमस्कार महामत्र का स्मरण

तथा रटन है। परमेष्ठि भले ही वे फिर तीनो काल तथा सर्वक्षेत्र के हो पर जाति से एक है। अत. एक का प्रभाव सब मे है एव सब का प्रभाव एक मे है। एक श्री अरिहत के स्मरण मे सबका स्मरण हो जाता है। तीनो भुवनो मे स्थित सारभूत तत्त्व आर्हत्य एव उसका स्मरण एक श्री अरिहत के स्मरण से सम्भव होता है। अत श्री अरिहत के स्मरण का प्रभाव अचिन्त्य है। विश्व को शुभ, शुभतर अथवा शुभतम बनाने वाला अथवा अशुभ, अशुभतर अथवा अशुभतम होने से रोकने वाला यदि कोई है तो वह श्री पच परमेष्ठिमय तत्त्व है। यह निश्चय जैसे जैसे दृढ होता जाता है त्यो-त्यो श्री अरिहतो का अथवा परमेष्ठियो का स्मरण, भावस्मरण बनकर जीवन का भाव रक्षण करता है। वही मत्र है जिसका मनन करने से रक्षण हो। अत नमस्कार के वर्णों से होता श्री परमेष्ठियो का स्मरण महामत्र स्वरूप बन परम उपकारक होता है।

श्री नमस्कार मंत्र का स्मरण

जो श्री जिनशासन का सार है, जिसको अन्त समय मे प्राप्त कर भवसमुद्र तरण किया जाता है तथा जीवन मे अनेक पाप आचरित होते हुए भी जिसके स्मरणमात्र से ही जीव सद्गति को प्राप्त करते है वही श्री पचपरमेष्ठि नवकार महामत्र अचिन्त्य महिमा से भरित है। देवत्व मिलना आसान है, विशाल राज्य, सुन्दरस्त्रियां, रत्न की ढेरियां अथवा सुवर्णपर्वत मिलने सुलभ है पर श्री नवकार मत्र मिलना तथा उसके प्रति अतरग प्रेम जाग्रत होना सब से अधिक दुर्लभ है। अत प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ मे उसका स्मरण करने का विधान है। चौदह पूर्व को धारण करने वाले भी अन्त समय मे इस महामत्र का स्मरण करते है।

इसके प्रभाव से स्वयभूरमण सागर से भी बडा ससार सागर सुखपूर्वक तिरा जा सकता है तथा मोक्ष के अविचल सुख शीघ्रातिशीघ्र प्राप्त किए जा सकते है। इस महामन्त्र का स्मरण हृदय मे अखण्डित रूप से विद्यमान रहे ऐसा

मनोरथ सम्यक् दृष्टि जीव मदा के लिए वांछित करता है। इस विषय मे कहा है कि—

दशमे अधिकारे महामत्र नवकार।
मनथी नवि मूको शिवसुख फल सहकार,
एह जपतां जाये दुर्गति दोष विकार।
सुपरे ऐ समरो, चौद पूरवनो सार ॥१॥

जन्मान्तर जातां जो पामे नवकार।
तो पातिक गाली, पामें सुरअवतार।
ऐ नवपद सरिखो मत्र न कोई सार।
इह भव ने परभवे सुख सम्पत्ति दातार ॥२॥

जुओ भील भीलडी, राजा राणी थाय।
नव पद महिमाथी राजसिंह महाराय।
राणी रत्नावती बेहु पाम्या छे सुर भोग,
एक भव पछी लेशे शिववधू संजोग ॥३॥

श्रीमती ने ए वली मत्र फल्यो तत्काल।
फणिधर फीटी ने प्रकट थई फूलमाल,
शिव कुमरे जोगी सोवन पुरिषो कीध।
एम एणे मत्रे काज घणाना सिद्ध ॥४॥

उपा० श्री विनयविजयजी महाराज
(पुण्य प्रकाश का स्तवन ढाल १०)

। शुभं भवतु सर्वेषाम्।

***

महामंत्र की अनुप्रेक्षा

तृतीय किरण

अनुक्रम

अनुप्रेक्षा

(तृतीय किरण)

महामन्त्र की आराधना

महामन्त्र की आराधना मे आराध्य, आराधक, आराधना एव आराधना का फल इन चार वस्तुओ का ज्ञान-आवश्यक है।

१. आराध्य—नवकार
२. आराधक—समिति-गुप्तियुक्त जीव
३ आराधना—मन, वचन एव काया की शुद्धि तथा एकाग्रता-पूर्वक होता जाप
४ आराधना का फल-इहलौकिक—अर्थ, काम, आरोग्य, अभि-रति पारलौकिक-स्वर्गापवर्ग के सुख।

परमेष्ठि कृपा के बिना पवित्र गुणो की सिद्धि नही होती है। नवकार के जाप से परमपद स्थित पुरुषो का अनुग्रह प्राप्त होता है जिससे जीवन मे सयम आदि गुणो की सिद्धि होती है। 'नमो' पद शरण-गमन रूप है। दुष्कृतगर्हा एव सुकृतानु-मोदना ये दोनो ही शरण-गमन रूप एक ही ढाल की दो बाजुएँ हैं। दुष्कृतगर्हा से पाप का मूल जलता है एव सुकृतानुमोदन से धर्म का मूल सिंचित होता है। 'नमो' पद स्वापकर्ष का बोधक है। अत. इससे दुष्कृतगर्हा होती है। 'नमो' पद नमस्कार्य के उत्कर्ष का बोधक है। अत इससे सुकृतानुमोदन होता है। स्वापकर्ष की स्वीकृति से पाप का प्रायश्चित होता है एव परोत्कर्ष के बोध से विनय गुण पुष्ट होता है जो धर्म का मूल है। इस प्रकार एक नमस्कार मे जीव की शुद्धि के लिए तीनो प्रकार की सामग्री निहित है।

सच्चा नमस्कार

शरणगमन नगद नारायण है। दुष्कृतगर्हा एव सुकृतानुमोदना दोनो ही शरण गमन रूप एक ही सिक्के की दो बाजुएँ हैं। दुष्कृत से जब भय होता है तभी दोष रहित की शरण स्वीकार करने की मनोवृत्ति होती है। जब सुकृत के प्रति अनुराग जाग्रत होता है तभी सुकृत के भण्डार श्री अरिहन्तादि की शरण-चाह उत्पन्न होती है। श्री अरिहन्तादि का नमस्कार दुष्कृतगर्हा तथा सुकृतानुमोदन का परिणाम है। इसी से वह एक ओर तो सहजमल का ह्रास करता है वहाँ दूसरी ओर जीव की भव्यत्व भावना का विकास करता है।

जब दोषापहार की भावना से तथा गुण प्राप्ति के लक्ष्य से सर्व दोषो से रहित एवं सर्व गुणो से युक्त की शरण स्वीकार होती है तभी नमस्कार सार्थक बनता है।

पाप नाशक एव मगलोत्पादक-नवकार की चूलिका मे कहा गया है कि नवकार पाप नाशक एवं मंगल का मूल है। सहजमल घटने से पाप का नाश होता है तथा भव्यत्व परिपक्व होने से मंगल की वृद्धि होती है। सहजमल घटने से भव्यत्व परिपक्व होता है एवं भव्यत्व परिपक्व होने से सहजमल घटता है। इस प्रकार एक दूसरे का परस्पर सम्बन्ध है। नमस्कार मे दुष्कृतगर्हा तथा सुकृतानुमोदन निहित है। दुष्कृतगर्हा से सहजमल घटता है तथा सुकृतानुमोदन से भव्यत्व परिपक्व होता है। सुकृत की सच्ची अनुमोदना दुष्कृतगर्हा मे तथा दुष्कृत की सच्ची गर्हा सुकृत की अनुमोदना में निहित है। दोनों मिलकर शरण रूप सिक्का बनता है। शरणरूपी सिक्के का दूसरा नाम नमस्कार भाव है। उसका साधन यह पचमगल का उच्चारण है।

दुष्कृतगर्हा एवं सुकृतानुमोदन एक ही सिक्के के दो पक्ष

जीव की कर्म के सम्बन्ध मे आने वाली शक्ति सहजमल एवं कर्म सम्बन्ध से मुक्त होने वाली शक्ति तथा-भव्यत्व कहलाती है। योग्य को नमन नही करने से तथा अयोग्य को नमन करने से सहजमल बढता है। इसके ठीक विपरीत योग्य को नमन करने से तथा अयोग्य को नमन नही करने से तथा-भव्यत्व विकसित होता है। योग्य को नमन करने तथा अयोग्य को नमन नही करने का ही अर्थ सच्चा नमस्कार है। सच्चे नमस्कार का अर्थ है योग्य की शरण में जाना तथा अयोग्य की शरण मे नही जाना। अयोग्य को नमन नही करने का अर्थ अयोग्य की शरण का अस्वीकार है। योग्य को नमन करने का अर्थ योग्य की शरण का स्वीकरण है। अयोग्य की शरण मे नही जाने का नाम ही दुष्कृतगर्हा है तथा योग्य की शरण मे जाना ही सुकृतानुमोदन है। ये दोनो शरणगमन रूप सिक्के की दो बाजुएँ है। श्री अरिहतादि के प्रति नमस्कार श्री जिन शासनरूपी साम्राज्य का नगद नारायण है। इस नगद नारायण (मुद्रा) के एक तरफ दुष्कृतगर्हा की तथा दूसरी तरफ सुकृतानुमोदन की छाप है। नमस्कार, दुष्कृतगर्हा तथा सुकृतानुमोदन—ये तीनो समन्वित होकर भव्यत्व परिपाक के उपाय बनते है।

संसार की विमुखता—मोक्ष की सम्मुखता

सहजमल जीव को संसार की तरफ तो तथा-भव्यत्व मुक्ति की ओर खीचता है। सहजमल के ह्रास से पाप के मूलो का नाश होता है तथा उसकी सिद्धि दुष्कृतगर्हा से होती है। तथा-

भव्यत्व के विकास से धर्म के मूल का अभिसिचन होता है तथा उसकी सिद्धि सुकृतानुमोदन से होती है।

श्री अरिहतादि का नमस्कार जीव को ससार तथा उसके कारणो से विमुख कर मुक्ति तथा उसके कारणो के अभिमुख करता है। श्री अरिहतादि की शरणयुक्त नमस्कार क्रिया ससार से विमुख कर मोक्ष की सम्मुखता साधित करती है। अत यह नमस्कार क्रिया वारम्वार करणीय है।

विषयो को नमन करने से सहजमल का वल वढता है। परमेष्ठियो को नमन करने से तथा-भव्यत्व भाव विकसित होता है। परमेष्ठि तथा विषय दोनो ही पाँच हैं। नमने का अर्थ है शरणगमन। पाँच विपयो की शरण जाने से चारो कषाय पुष्ट होते है। पच परमेष्ठियो की शरण जाने से ज्ञान, दर्शन, चारित्र तथा तप, आत्मा के चार मूलगुण पुष्ट होते है। पुष्टि प्राप्त चारो कषाय चार गति रूप ससार का परिवर्द्धन करते है। पुष्टि प्राप्त ज्ञानादि चारो गुण चारो गतियो का उच्छेदन करते है। चारो गतियो के कारण चारो कषाय हैं। ज्ञानादि गुणो तथा दानादि धर्मों द्वारा चारो प्रकार के कषायो का उच्छेदन होता है।

सम्यक्दर्शनगुण क्रोध-कषाय का, सम्यक्ज्ञानगुण मान कषाय का, सम्यक्चारित्रगुण माया कपाय का तथा सम्यक्तप-गुण लोभ कषाय का निग्रह करते हैं। दान धर्म द्वारा मान त्यक्त होता है एव नम्रता गृहीत होती है, शील धर्म द्वारा माया त्यक्त होती है एव सरलता गृहीत होती है, तपोधर्म द्वारा लोभ जीता जाता है एव सन्तोप आता है तथा भावधर्म द्वारा क्रोध जीता जाता है तथा सहनशीलता आती है इन चारो प्रकार के धर्मों के द्वारा एव चारो गुणो की पुष्टि द्वारा चारो गतियो

तथा उनके मूल चारो कषायों का अन्त कर परमेष्ठि नमस्कार पचम गति को प्रदान करता है।

धर्म प्राप्ति का द्वार

ससार असार है। उसमे निहित दु ख को तो सभी कोई असार मानते है पर ज्ञानी पुरुष ससार के सुख को भी असार मानते है। इसका कारण यह है कि सुख के लिए पाप होता है तथा पाप के परिणाम स्वरूप दु ख मिलता है। अत दु ख नही पर पाप असार है तथा सुख सार नही पर उसका कारण पुण्य ही सार है—ऐसी बुद्धि वाले को ही श्री अरिहंतादि की शरण प्रिय लगती है।

भगवान की शरण स्वीकार करने हेतु मुख्य दो ही उपाय हैं–एक तो पाप को–दुष्कृत को असार मानना एव दूसरा धर्म को–सुकृत को सार मानना। ऐसी मान्यता वाला ही सर्वथा पापरहित तथा धर्मसहित श्री अरिहतादि चार का माहात्म्य समझ सकता है एव उनको भाव पूर्वक नमस्कार कर सकता है।

जिस प्रकार सोने के आभूपणो मे सोना ही मुख्य कारण है वैसे ही अर्थ, काम एव मोक्ष प्राप्ति मे धर्म ही मुख्य कारण है।

अर्थ, काम तथा मोक्ष सभी धर्म रूपी सुवर्ण के भिन्न-भिन्न रूप है। नमस्कार भाव से उस धर्म के प्रति प्रेम जाग्रत होता है। अत परमेष्ठि नमस्कार धर्म प्राप्ति का द्वार है।

पाप का पश्चात्ताप एवं पुण्य का प्रमोद

पाप कार्य कर जिसको वास्तविक पश्चात्ताप हो उसका पाप बढने से रुक जाता है। धर्म कार्य कर जिसको हर्ष नही

हो उसका पुण्य बढने से रुक जाता है। पाप का पश्चात्ताप पाप से परावर्तित होने का साधन है। पुण्य का प्रमोद ही पुण्य की दिशा मे आगे बढने का उपाय है। श्री नमस्कार मन्त्र मे पाप का पश्चात्ताप है एव पुण्य का प्रमोद है। पाप का पश्चात्ताप दुष्कृतगर्हा का ही दूसरा नाम है। पुण्य का प्रमोद ही सुकृतानुमोदन का पर्याय शब्द है।

श्री नमस्कार मत्र की आराधना पाप से परावर्तित होने एव पुण्य की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा प्रदान करती है। इसी से पाप निरनुबन्ध तथा पुण्य सानुबन्ध होता है। पुण्यानुबन्धी पुण्य के अर्थी तथा पापानुबन्ध से भीरु प्रत्येक मुमुक्षु आत्मा के लिए नित्य एक सौ आठ बार श्री नमस्कार मन्त्र का स्मरण अद्यावधि अप्राप्त नई आध्यात्मिक दुनिया मे प्रवेश करने का प्रवल साधन बनता है।

सीधे मार्ग पर चलना इतना कठिन नही जितना कठिन मार्ग पर चढना। श्री नमस्कार महामन्त्र जीव को अध्यात्म के मार्ग पर आरूढ करता है। शुद्ध अध्यात्म के मार्ग पर अधिरोहण के पश्चात् जीव यथाशक्ति उस मार्ग पर चलने का प्रयास करता है तथा शीघ्र या विलम्ब से अपने इष्ट स्थान पर पहुँच जाता है। शुद्ध अध्यात्म ही पापरहित होने का मार्ग है। पुण्य के उस पार भी उसी से पहुँचा जा सकता है।

श्री नमस्कार मन्त्र दुष्कृतगर्हा रूप होने से जीव को पापरहित तथा सुकृतानुमोदन रूप होने से जीव को पुण्यानुबन्धी पुण्यवाला वनाता है। श्री नमस्कार मन्त्र अरिहंतादि चार की शरण रूप होने से आत्मा के शुद्ध स्वरूप का प्रकाशक होता है। श्री अरिहतादि चार आत्मा के शुद्ध स्वरूप को प्राप्त होने से उसका आलम्वन शुद्ध स्परूप का ज्ञान तथा श्रद्धायुक्त करवाता है तथा उसी ज्ञान एव श्रद्धा के अनुसार

आत्मा के शुद्ध स्वरूप का ध्यान भी करवाता है। शुद्ध स्वरूप का ध्यान ही अन्त मे मुक्ति प्रदान करवाता है।

श्री नमस्कार मन्त्र की सिद्धि

वहुत से लोग शारीरिक दु.ख को ही दु ख मानते है। बहुत से उससे आगे वढकर मानसिक दु·खो को दु ख मानते है। उससे भी दो कदम आगे वढकर अनेको जन शारीरिक तथा मानसिक दु.खो की मूल वासना, ममता या तृष्णा ही को दु ख मानकर उनके निवारण हेतु प्रयत्न करते हैं। ममता सकुचित न होकर जब व्यापक वनती है तव समता अपने आप आती है। दोनो के मूल मे स्नेह तत्त्व है। जव स्नेह सकीर्ण-सकीर्णतर हो तभी वह ममता कहलाता है। जब वह व्यापक तथा परिपूर्ण वनता है तव समता कहलाता है। सकीर्ण स्नेह ही ममता है। उसमे से जो वासना या तृष्णा उत्पन्न होती है वही वासना आन्तर तथा वाह्य सभी प्रकार के दु खो का मूल है। मनुष्य घर, हाट या वस्त्र के कचरे या मैल को दूर करने में तत्पर रहता है। इसी प्रकार अनाज एव भोजन के कचरे को अप्रमत्त-भाव से दूर करता है पर वह मात्र मन के या आत्मा के ममता रूपी मैल या तृष्णा तथा वासनारूपी कचरे को निकालने हेतु तत्परता नही दिखाता है। यह तत्परता शास्त्राभ्यास तथा तत्त्वचिन्तन से आती है। शास्त्राभ्यास तथा तत्त्वचिन्तन का वीज श्री नमस्कार मन्त्र है।

श्री नमस्कार मन्त्र के सतत स्मरण तथा चिन्तन से शास्त्राभ्यास के प्रति आदर जाग्रत होता है। शास्त्राभ्यास के प्रति आदर जाग्रत होने से शास्त्रकार के प्रति आदर जाग्रत होता है, वहुमान उत्पन्न होता है। शास्त्रकार के प्रति बहुमान उत्पन्न होने से तत्त्वचिन्तन गहरा होता है। तत्त्वचिन्तन गहरा होने से

यह समझा जाता है कि वासना, तृष्णा तथा ममता के मूल मे स्नेह की सकीर्णता है। जब जीव को यह अवगति होती है कि स्नेह की मकीर्णता ही ममतादि सभी दोषों का मूल है तभी वह उसे निष्कासित करने हेतु उपाय ढूढता है इस उपायान्वेषण के समय उसे श्री नमस्कार मन्त्र पर सर्वाधिक आदर उत्पन्न होता है। श्री नमस्कार मन्त्र पर अधिक आदर भाव रखने से समस्त जीवराशियो पर स्नेह का परिणाम व्याप्त हो जाता है। सकीर्ण ममता या वासना का कारण सकीर्ण स्नेह जब व्यापक तथा पूर्ण बनता है तभी वह समता का हेतु बनता है। जब यह समझा जाता है कि समता की सिद्धि का उपाय स्नेह की व्यापकता है तथा स्नेह की व्यापकता का उपाय निष्काम भावयुक्त, स्नेह पूर्ण श्री पचपरमेष्ठि का नमस्कार है तभी नमस्कार मन्त्र की सिद्धि मानी जाती है।

साध्य, साधन एवं साधना

यह सत्य है, मनुष्य मात्र मे थोड़ी बहुत मात्रा मे वासना तथा इच्छा रूप निर्बलता विद्यमान है पर इस निर्बलता पर विजय प्राप्त करने का सामर्थ्य भी उसमे विद्यमान है। मनुष्यमात्र मे उच्चगुणो क बीज सुप्त रूप मे पड़े हुए रहते हैं। जब वह सर्वोत्कृष्ट गुणी की शरण मे जाता है तब वे बीज अकुरित हो जाते है। जब तक वह सर्वोत्कृष्ट की शरण स्वीकार नही करता तब तक उसके अन्तर्हित बीज अकुरित, पल्लवित तथा फलान्वित नही हो सकते हैं।

सिद्ध होना अर्थात् पूर्णत्व प्राप्त करना ही अन्तिम ध्येय है। इस ध्येय एव आदर्श को सिद्ध करने हेतु हृदय मे श्री पंचपरमेष्ठि का ध्यान आवश्यक है। श्री नमस्कार मन्त्र के स्मरण द्वारा इस ध्यान को स्थायी बनाया जा सकता है।

जिस प्रकार रोग के भय से लोग मिष्ठान्न भोजनादि का त्याग करते है वैसे ही जब दुर्गति का भय व्याप्त होता है तो पाप-व्यापार स्वत. रुक जाते हैं। रोगावस्था मे भोजन करने से रोग बढता ही है यह ध्रुव नियम नही, पर यह तो सर्वांशत' सत्य है कि पाप की निरन्तरता से दुर्गति अवश्यंभावी है। अहभावपूर्वक की गई स्वार्थ-साधना जीव को अधोगामी बनाती है। नमस्कारभावपूर्वक की गई परमार्थ-साधना जीव को ऊर्ध्वगामी बनाती है। नमस्कारभाव द्वारा ही अहभाव को पृथक् किया जा सकता है।

नमस्कार भाव मे साध्य, साधन एव साधना तीनो की शुद्धि निहित है। 'नमो अरिहताण' में साधन है, अरिहं साध्य है एव ताण'—तन्मयता-साधना है। प्रथम साध्य को लक्षित करना 'नमो' पद से सम्भव है एवं साध्य को प्राप्त करना 'ताण' पद से सम्भव है। 'नमो' पद द्वारा साध्य का सम्यक् योग होता है, 'अरिह' पद द्वारा साध्य का सम्यक् साधन होता है एव 'ताणं' पद द्वारा साध्य की सम्यक् सिद्धि होती है।

आत्म-ज्ञान एवं निर्भयता

श्री अरिहतादि पचपरमेष्ठि के अतिरिक्त सभी प्राणी सभय है। ये पाच पद सदैव निर्भय है। इसका कारण है उनकी "सकल-तत्त्व-हिताशयता।" सभय को निर्भय बनने हेतु सर्वत्र हित चिन्तन रूप मैत्री भाव का एवं इस भाव से भरित श्री पचपरमेष्ठि का अवलम्बन है। इस अवलम्बन से भयमुक्ति होकर निर्भयता प्रकट होती है। श्री परमेष्ठियो का आलम्बन आत्म-ज्ञान का कारणभूत बनता है। आत्मज्ञान का अर्थ यह ज्ञान है कि मैं आत्मा हूँ, मैं देहादि से भिन्न आत्मस्वरूप हूँ। जरा मरण आदि का भय देह को होता है, आत्मा को नही।

आत्मा अजर-अमर अविनाशी है—ऐसा स्वसवेद्य ज्ञान परमेष्ठियो की भक्ति के प्रभाव से प्रकट होता है। आत्म-ज्ञानियो की भक्ति आत्मज्ञान प्रकट करती है। पांचो परमेष्ठि आत्मज्ञानी हैं। अत उनका आलम्बन आत्मस्वरूप का ज्ञान प्रदान करने मे पुष्ट-आलम्बन वनता है। प्राप्य वस्तु जिसमे हो उसका आलम्बन पुष्टावलम्वन गिना जाता है। श्री परमेष्ठियो का आलम्बन आत्मज्ञान एव निर्भयता दोनो के लिए पुष्टावलम्वन है।

मोहविषापहार का महामन्त्र

साप का जहर चढने से जिस प्रकार नीम कडवा होते हुए भी मीठा लगता है वैसे ही मोहरूपी सर्प का जहर चढने से कडवे विपाको को प्रदान करने वाले विषय-कषाय के कडवे रस भी मीठे लगते हैं। सर्प का जहर उतरने के बाद कडवा नीम कडवा लगता है वैसे ही मोहरूपी सर्प का जहर उतरने के वाद विषय-कषाय भी कडवे लगते है। जिस प्रकार सर्प के विष को उतारने का मन्त्र होता है, वैसे ही मोहरूपी सर्प के विषय को उतारने के लिए भी मन्त्र है एव वह देवगुरु का ध्यान है। देवगुरु का ध्यान करने का मन्त्र श्री नवकार मन्त्र है। अत वह मोह-विष उतारने का महामन्त्र गिना जाता है।

अविरति, प्रमाद, कषाय एव योग कर्म बध के कारण हैं तथा उसका अनुबन्धक है मिथ्यात्व। श्री नमस्कार मत्र के आराधन से देवगुरु के ध्यान द्वारा कर्म का अनुवन्ध टूट जाता है एव मिथ्यात्व मोह विलीन हो जाता है।

चारो गति के भिन्न-भिन्न कार्य हैं। सुख भोगने के लिए स्वर्ग, दु ख भोगने के लिए नरक, अविवेकी व्यवहार के लिए

तिर्यंच एव विवेक सहित धर्माराधन के लिए मनुष्यभव है। श्री जिनोक्त धर्म मे तीन शक्तियाँ है जो आने वाले कर्मों को रोकती हैं, पुराने कर्मों को खपाती हैं तथा हितकारी परिणाम वाले शुभास्रव सम्पादित कराती है।

मिथ्यात्वमोह की उपस्थिति मे दूसरे कर्मो का क्षयोपशम अधिक पाप-कर्म करवाता है। मन्द-मिथ्यात्व एव सम्यक्त्व की उपस्थिति में सभी क्षयोपशम लाभदायक होते है। कर्मकृत अवस्था का नाम ही ससार है एवं उसे टालने का उपाय ही धर्म है। मनुष्यभव मे सम्यक्त्व या मद-मिथ्यात्व की उपस्थिति में उस धर्म का साधन सम्भव है। देवगुरु की भक्ति ही मिथ्यात्व को मन्द करने का एव सम्यक्त्व की प्राप्ति का अमोघ उपाय है। उस भक्ति को करने का प्रथम एव सरल साधन श्री नमस्कार-मन्त्र का स्मरण एवं जाप है।

मानव जन्म मे धर्म की आराधना करने के जो उत्तम अवसर मिलते है उनका लाभ लेने की जिसको तीव्र उत्कठा है उसके लिए श्री नमस्कार मन्त्र एक जडी-बूटी के समान है।

द्रव्य-भावसंकोच--काया एवं मन की शुद्धि

नन्दन, नमस्कार, अभिवादन, करयोजन, अग-नमन शिरोवन्दन आदि नमस्कार रूप हैं। वे द्रव्य-भाव दोनों सकोच रूप है, अभिवादन भाव-सकोच है। उसका अर्थ है प्रत्यक्ष एवं परोक्ष गुणी के गुणो की प्रशंसा तथा उन गुणो के प्रति विशुद्ध मन की वृत्ति अर्थात् मन की विशुद्ध वृत्ति। इस प्रकार काया की एव वचन की विशुद्ध प्रवृत्ति तथा मन की विशुद्ध वृत्ति मिलकर वन्दन पदार्थ बनता है अर्थात् मन-वचन-काया की विशुद्ध प्रवृत्ति का ही दूसरा नाम वन्दन है एव उसे ही द्रव्य-भाव सकोच भी कहा जाता है।

मंत्रोच्चारण मे शव्द द्वारा द्रव्य सकोच होता है एवं शव्दवाच्य-अर्थ के चिन्तन द्वारा भाव-सकोच होता है।

द्रव्य-सकोच का अर्थ है देह एव उसके अवयवो का नियमन एवं भाव-सकोच का अर्थ है मन एव उसकी वृत्तियो की निर्मलता।

महामत्र के वाच्य श्री परमेष्ठि भगवन्तो का स्मरण देव-गुरु का स्मरण करवाता है एव देवगुरु का स्मरण आत्मा के शुद्ध स्वरूप का स्मरण करवाता है। इस प्रकार वह शुद्ध स्वरूप का स्मरण एव अशुद्ध स्वरूप का विस्मरण करवा कर देवगुरू के शुद्ध स्वरूप के साथ आत्मा की एकता का ज्ञान करवाता है। दूसरे प्रकार से मत्र के पवित्र अक्षर प्राणो की शुद्धि करते हैं। शुद्ध प्राण मन को एव मन द्वारा आत्मा को शुद्ध करते हैं।

मत्र के शव्दो मे जिस प्रकार प्राण एव मन द्वारा आत्मा को शुद्ध करने की शक्ति है, वैसे ही स्वय के वाच्यार्थ द्वारा आत्मा को निर्मल करने की सूक्ष्म शक्ति भी निहित है।

मत्र के वर्ण शव्दो की रचना करते हैं, एवं शव्द उसको वाच्यार्थ से सम्बन्धित कर मानसिक शुद्धि करते हैं। वाचक के प्रणिधान द्वारा सम्पन्न होती शुद्धि स्थल एवं द्रव्य शुद्धि है वाच्य के प्रणिधान द्वारा होती शुद्धि ही सूक्ष्म एव भावशुद्धि है।

मत्र के पद एवं उसके वाच्यार्थ का सतत रटन एव स्मरण करते रहने से वाह्यान्तर-शुद्धि के साथ नित्य नये ज्ञान का प्रकाश मिलता है, अर्थात् मोहनीय कर्म के ह्रास के साथ ज्ञानावरणीय आदि कर्मो का भी ह्रास होता है एव अन्त मे

कैवल्य की प्राप्ति भी सुलभ बनती है। कहा गया है कि –

'मोहक्षयात् ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च कैवल्यम्।'

श्री तत्त्वार्थसूत्र अ १०–१.

मार्ग--दर्शक एवं मार्ग रूप

प्रभु मार्ग-दर्शक एव मार्ग रूप भी हैं। जिस प्रकार भूतकाल मे मार्ग बताकर वे उपकार कर चुके हैं वैसे ही वर्तमान काल मे दर्शन-पूजनादि द्वारा एव तज्जन्य शुभभावादि द्वारा मार्ग रूप बनकर वे उपकार कर रहे है।

प्रभु के दर्शनादि से रत्नत्रयी रूप मोक्ष-मार्ग की प्राप्ति होती है। उसमे प्रभु निमित्तकर्त्ता है एव शुभ भाव प्राप्त करने वाला जीव उपादानकर्त्ता है।

नामादि द्वारा प्रभु के आलम्बन से मोहनीय आदि कर्म का क्षय क्षयोपशम होता है एव जीव को शुभ भाव रूपी रत्न-त्रयी की प्राप्ति होती है। वही मार्ग है एवं उसे प्रदान करने वाले वे ही प्रभु है।

शुभ भाव ही मार्ग अथवा तीर्थ है। उसे जो प्रशस्त करे वह तीर्थंकर कहलाता है। व्यवहार से तीर्थ के कर्त्ता श्री तीर्थंकर परमात्मा कहलाते हैं। वह तीर्थ दो प्रकार का है। द्वादशांगी एव उसके रचयिता प्रथम गणधर तथा श्रीसघ बाह्य तीर्थ है। शुभ भाव अभ्यन्तर तीर्थ है। उसके भी प्रयोजनकर्त्ता, निमित्तकर्ता एव प्रेरणादाता परमात्मा है। अत उनकी भक्ति निरन्तर करनी चाहिये। नवकार मत्र के प्रथम पद से वह भक्ति हो सकती है। जो श्री अरिहन्त भगवान को उनके शुद्ध आत्मद्रव्य से, शुद्ध केवल-ज्ञान गुण से एव शुद्ध स्वभाव-परिणमन रूपी पर्याय से जानता है वही आत्मा

को निश्चय रूप से जान सकता है। कहा है कि —

जेह ध्यान अरिहन्त को,
सो ही आतम ध्यान,
फेर कुछ इणमे नहिं,
एहिज परम विधान,
एम विचार हियड़े धरी,
समकित दृष्टि जेह,
सावधान निज रूप मे,
मगन रहे नित्य तेह, ।
—मरणसमाधिविचारगाथा २२५-२२६.

"द्रव्यतया परमात्मा एव जीवात्मा"
"द्वात्रिंशद्-द्वात्रिंशिका टीका"

द्रव्य से स्वय परमात्मा ही जीवात्मा है। शुद्ध द्रव्य, गुण एव पर्याय से श्री अरिहत का ज्ञान होने से तदनुसार उनका ध्यान होता है। वह ध्यान समापत्तिजनक ध्यान बनकर मोह का नाश करता है।समापत्ति का अर्थ है ध्यानजनित स्पर्शना अर्थात् ध्यान काल मे ध्याता को होती हुई ध्येय की स्पर्शना। वह दो प्रकार से होती है—एक ससर्गारोप से एव दूसरी अभेदारोप से।

शुद्धात्मा के ध्यान से अन्तरात्मा के प्रति परमात्मा के गुण का ससर्गारोप होता है। यह प्रथम समापत्ति है । इसके पश्चात् अन्तरात्मा मे परमात्मा का अभेद-आरोप होता है। यह दूसरी समापत्ति है। उसका फल बहुत विशुद्ध समाधि है।

श्री नमस्कार मत्र दोनो प्रकार की समाधि का कारण बनकर साधक को विशुद्ध समाधि देने वाला है। अत उसका बार-बार स्मरण करना चाहिए, ध्यान करना चाहिए एवं उसका पुन. पुन. ध्यान करना चाहिए।

मंत्र द्वारा मन का रक्षण

मत्र शब्द मन के साथ गाढ सम्बन्ध रखता है। मन एव प्राणो के बीच अविनाभाव सम्बन्ध है। मन का स्पन्दन प्राणो को स्पन्दित करता है और प्राणो का स्पन्दन मन को चकित करता है।

"यत्र मनस्तत्र मरुत्, यत्र मरुत्तत्र मन"

मनुष्य की वाणी एव वर्तन भी मन की स्थिति का ही प्रतिविम्ब है। अत मन को ही शास्त्रो मे बन्ध एव मोक्ष का कारण कहा गया है। शरीर से जो कुछ काम होते दिखाई देते हैं उनका पूर्ववर्ती प्रेरणा-बल मनुष्य के मन मे ही स्थित रहता है। मन शुद्धि पर ही मनुष्य की शुद्धि निर्भर है।

वाह्य जगत के कार्य इन्द्रियो द्वारा होते दिखाई देते हैं पर वास्तव मे तो ये समस्त क्रियाए मस्तिष्क मे स्थित मन के विविध केन्द्रो द्वारा ही सम्पादित होती हैं। इन्द्रियाँ तो उसके वाह्य करण हैं। अहकार, बुद्धि, चित्त, मन आदि आन्तर-करण हैं। इन आन्तर करणो के द्वारा ही प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम आदि प्रमाणो का बोध होता है। निद्रा, स्वप्न, स्मृति एव मिथ्याज्ञान भी अन्त.करणो द्वारा ही होते है। जाग्रत, स्वप्न एवं निद्रा के उपरान्त एक चौथी अवस्था भी है। जिसे तुरीयावस्था (उजागर दशा) कहते हैं। उस अवस्था मे ही जीव को आत्म प्रत्यक्ष या आत्मसाक्षात्कार होता है। मन को इस अवस्था के लिए तैयार करने का अमूल्य साधन मत्र है। मत्र द्वारा मन एकाग्र होता है, शुद्ध वनता है एव अन्तर्मुख बनता है। एकाग्र, शुद्ध एवं अन्तर्मुख वने हुए मन मे विवेक, वैराग्य जागता है उसके पश्चात् शम, दम, तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा एव समाधान प्राप्त होते है एवं उनसे अध्यात्म मार्ग की यात्रा अग्रसर होती है।

मत्र का प्रधान कार्य मनुष्य की रक्षा करना है। आधि, व्याधि एव उपाधि—इन तीनो से मत्र रक्षण करता है। मनुष्य के मन की निरर्थक चिन्ताओ को मत्र-साधना छुडाती है एव मनुष्य-शरीर को चिन्ता एव विषाद से उत्पन्न होते अनेक शारीरिक रोगो से वचाती है। यही मत्र-साधना प्रारब्ध-योग से आने वाले वाह्य सकट तथा अनिवार्य प्रत्यवाय-विघ्नादि के समय मन को शान्त रख उनसे दूर होने के मार्गों को ढूढ निकालने मे सहायक होती है।

मत्र-साधना के परिणामस्वरूप आत्म-साक्षात्कार होने पर उनके सम्पर्क मे आने वाली आत्माओ को भी वह सत्य-मार्ग-दर्शन करवाकर अनक आपत्तियो से उनका उद्धार करवा सकती है। इस प्रकार मत्र-साधना मनुष्य के सर्वलक्षी आध्यात्मिकविकास मे अत्यन्त सहायक बनने वाली होने से अत्यन्त आदरपूर्वक करणीय है।

श्री नवकार मत्र सभी मत्रो मे शिरोमणि होना है। उसकी साधना मे रात दिन लीन मनुष्यो को वह विवेक, वैराग्य एव अन्तर्मुखिता देने वाला तथा आधि, व्याधि तथा उपाधि से उवारने वाला होता है। इतना ही नही मन को पर अवस्था को भी प्रदान करने वाला होता है जिसे तुरीयावस्था कहते हैं। तुरीयावस्था को अमनस्कता, उन्मनीभाव एव निर्विकल्प चिन्मात्र अवस्था भी कहते हैं। उस अवस्था मे अत्यन्त दुर्लभ आत्मज्ञान होता है जो सकल क्लेश एव कर्म से जीव को हमेशा के लिए मुक्ति दिला देता है।

मन को जिताने वाला 'नमो' मंत्र

'नमो' मंत्र द्वारा ही मन को आत्माधीन बनाने की प्रक्रिया साधित होती है। नमो मत्र का न' अक्षर सूर्य वाचक है।

दूसरा 'म' अक्षर चन्द्रवाचक है।

(कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचन्द्र सूरि० कृत एकाक्षरी कोप)

मत्र शास्त्र में सूर्य को आत्मा एव चन्द्रमा को मन गिना जाता है इस दृष्टि से 'नमो' पद मे प्रथम स्थान आत्मा को प्राप्त होता है एव मन पद मे प्रथम स्थान मन को मिलता है। 'नमो' मत्र द्वारा ससार परिभ्रमण मे परिणमनशील मन का प्रथम स्थान मिट कर आत्मा को प्रथम स्थान मिलता है जिससे ससार-परिभ्रमण का अन्त होता है 'नमो' पद के बारम्बार स्वाध्याय से ऐसा ज्ञान एव ऐसा बोध होता है कि आत्मा मन का स्वामी है, मन आत्मा का स्वामी नही।

'नमो' पद पूर्वक जितने मत्र है वे सब आत्मा को मन की गुलामी से मुक्त कराने वाले होते है।

मन कर्म का सर्जन है अर्थात् जिसे कर्मबन्धन से मुक्त होना हो उसे सर्व प्रथम मन की अधीनता से मुक्त होना पडेगा। 'नमो' मत्र मन पर प्रभुत्व एव प्रकृति पर विजय करवाने वाला मत्र है।

'नमो' मत्र आत्माभिमुख करता है। बहिर्मुख मन को आत्माभिमुख करने का सामर्थ्य 'नमो' मत्र मे है।

'नमो' पद का अर्थ आत्मा को मुख्य स्थान देना एवं मन तथा उपलक्षण से वचन, काया, कुटुम्ब, धन आदि को गौण समझना है।

'नमो' पद का विशेष अर्थ आत्मा मे ही चित्त, आत्मा मे ही मन, आत्माभिमुख लेश्या, आत्मा का ही अध्यवसाय, आत्मा का ही तीव्र अध्यवसाय, आत्मा मे ही उपयोग एव आत्मा मे ही तीव्र उपयोग धारण करना है। तीनो करणो एव तीनो योगो को आत्म-भावना से ही भावित करना 'नमो' पद का विशिष्ट अर्थ है।

'नमो' पद केवल नमस्कार रूप नही वरन् द्रव्य-भाव सकोच रूप है। द्रव्य, भाव, देह, प्राण, मन एव बुद्धि से, बाहर से एव अन्दर से सकुचित होना, साथ ही इन देह, प्राण, मन, बुद्धि आदि सब मे चैतन्य का सम्पादन करने वाले आत्मतत्त्व मे विलीन होना, निमज्जित होना तथा तन्मय, तत्पर एव तद्रूप होना ही 'नमो' पद का रहस्यार्थ है।

'नमो' पद के साथ श्री अरिहत, सिद्ध, साधु आदि पदो को सयुक्त करने से उसका अर्थ एव आशय भी आत्मा की शुद्ध अवस्थाओ को आगे वढाने का है तथा उन अवस्थाओ द्वारा अवस्थावान शुद्ध आत्मा मे परिणति लाकर वहाँ स्थिर करने का है।

जाप का ध्येय है आत्म रूप मे अर्थाकार हो जाना। कहा है कि—

'तज्जपस्तदर्थभावनम्'

अर्थात्—मत्र का जाप मत्र के अर्थ के साथ भावित होने के लिए है।

अनात्मभाव की तरफ ढलते जीव को आत्म-भाव की तरफ ले जाने का कार्य नमो मत्र द्वारा साधा जाता है। मन अनात्म-भाव की ओर ढलता है। अत वह ससार मे जीवात्मा को ले जाने के लिए सेतु बनता है। 'नमो' इसके विरुद्ध आत्म भाव मे ले जाने हेतु सेतु बनता है।

'नमो' पद अन्तरात्मभाव का प्रतीक है। अनात्मभाव से आत्मभाव की पूर्णता मे ले जाने के लिए 'नमो' मत्र सेतु का काम करता है।

मन ही ससार है। आत्मा ही मोक्ष है। मन का झुकाव ससार की तरफ से मुडकर आत्मा की तरफ होना ही मोक्ष मार्ग है एव वही 'नमो' पद का अभिप्रेत है।

'नमो' पद रूपी सेतु

'नमो' शब्द अर्द्ध मात्रा स्वरूप है। त्रिमात्र मे से अमात्र मे ले जाने के लिए अर्द्ध मात्रा सेतु रूप है। कर्मकृत-वैषम्य त्रिमात्र रूप है। धर्मकृत 'नमो' भाव ही अर्द्ध मात्रा रूप है एवं इससे होने वाला पाप का नाश एव मगल का आगमन ही अमात्र रूप है। अमात्र का अर्थ है अपरिमित आत्म-स्वरूप। राग, द्वेष एव मोह ही त्रिमात्र रूप है एव 'नमो' ही अर्द्ध मात्र रूप है अथवा औदयिक भाव के धर्म त्रिमात्र रूप है। क्षयोपशम भाव के धर्म ही अर्द्ध मात्र रूप हैं एव क्षायिक भाव के धर्म ही अमात्र रूप है।

'नमो' मत्र द्वारा औदयिक भावो के धर्मों का त्याग होकर क्षायिक भाव के धर्म प्राप्त होते है एव वे प्राप्त होने मे क्षयो-पशम भाव के धर्म सेतु रूप वनते है।

'नमो' मत्र ममत्व भाव का त्याग करवा कर समत्व भाव की ओर ले जाता है अत वह सेतु रूप है। 'नमो' मत्र निर्विकल्प पद की प्राप्ति हेतु अशुभ विकल्पो से मुक्त कर शुभ सकल्पो से सयुक्त करने वाला है। इसलिए भी उसकी सेतु की उपमा अन्वर्थक है—सार्थक है।

निर्विकल्प चिन्मात्र समाधि

मत्र का अर्थ है गुह्य भाषण। जीवात्मा का परमात्मा के साथ जिन पदो द्वारा गुह्य भाषण हो उन पदो को मत्र पद कहते है। गुह्य भाषण का अर्थ है विना किसी अन्य की साक्षी के मात्र आत्म-साक्षी से आत्मा का परमात्म-भाव रूप मे स्वीकार।

'सर्वे जीवात्मन. तत्त्वत: परमात्मान एव'।

अर्थात्—"सभी जीवात्मा तत्त्व से परमात्मा हैं", इस प्रकार से स्वय की आत्मा मे ही स्वय के शुद्ध स्वरूप के मनन को ही मत्र सज्ञा प्राप्त होती है—'मननान्मत्र'। पुन पुन इस प्रकार की मत्रणा–गुह्यकथनी स्वय के सकुचित स्वरूप का त्याग कर निस्सीम स्वरूप का भान कराती है। यह बोध जैसे जैसे दृढ होता जाता है वैसे वैसे सकल्प-विकल्प से मुक्ति दिला कर निर्विकल्प अवस्था की प्राप्ति करवाता है। उसे निज शुद्ध स्वरूप की अनुभूति अथवा निर्विकल्प चिन्मात्र समाधि रूप मे पहिचाना जाता है।

'नमो' मत्र द्वारा यह सब काम शीघ्र होने से वह महामत्र कहलाता है।

सर्वशिरोमणि मंत्र

शुद्ध आत्म-द्रव्य की अनुभूति मोदक के स्थान है उसका ज्ञान गुड के स्थान पर है एव उसकी श्रद्धा घी के स्थान पर है। शुद्ध आत्मद्रव्यपूर्ण ज्ञान एव श्रद्धा के साथ होता उसका ध्यान, स्मरण, रटन आदि आटे के स्थान पर है।

शुद्ध आत्म-स्वरूप के लाभ की इच्छा के अतिरिक्त सभी इच्छाओ का जिसमे निरोध है ऐसी तप रूपी अग्नि मे आत्म-ध्यान रूपी आटे के रोट बनाकर उन्हे सत्क्रियाओ से कूट कर उसमे श्रद्धा रूपी घी एवं ज्ञान रूपी गुड मिलाकर जो मोदक तैयार होता है वही मोक्ष-मोदक है एव उसमे ससार के सब प्रकार के सुखो के आस्वाद से अनन्तगुणा अधिक सुखास्वाद निहित है।

निश्चयनय से आत्मा के शुद्ध एव पूर्ण स्वरूप का ज्ञान एव श्रद्धान तथा व्यवहारनय से शुद्ध स्वरूप मे उपयोग रूपी

प्रणिधान ही मोक्ष रूपी मोदक को प्राप्त करने के सरल उपाय है। "नमो अरिहंताणं" पद के ध्यान से-रटन से पुनः पुन. उच्चारण रूपी जाप एव प्रणिधान-ध्यान से वे सिद्ध हो सकते है। अत सात अक्षर के इस मत्र को मोक्ष प्राप्ति के लिए सर्वशिरोमणि मंत्र कहा गया है।

सच्चे मंत्रों का प्रभाव

सच्चे मत्र देव, गुरु एव आत्मा के साथ तथा दूसरी तरफ मन, पवन एव आत्मा के साथ ऐक्य सधवाने वाले होने से वे सभी अन्तरायो का निवारण करवाने वाले तथा अन्तरात्म-भाव की प्राप्ति करवाने वाले होते हैं।

अन्तरात्मभाव का अर्थ है आत्मा में आत्मा द्वारा आत्मा की प्रतीति। उस प्रतीति को करने हेतु अथवा यदि वह हुई हो तो उसे दृढ वनाने हेतु सच्चे मत्र का आराधन परम सहायभूत होता है।

मत्र के अक्षरो का उच्चारण प्राणो की गति को नियमित करता है। प्राणो की गति की नियमितता मन को नियन्त्रित करती है। मन का नियन्त्रण आत्मा का प्रभुत्व प्रदान करता है। मंत्रो के अर्थो का सम्वन्ध देवतत्त्व एव गुरुतत्त्व के साथ है। अत. वह देवतत्त्व एव गुरुतत्त्व का बोध करवाकर शुद्ध आत्मतत्त्व का ज्ञान करवाता है।

मन पर (आत्मा का) प्रभुत्व प्राप्त करवाने की क्रिया से एव शुद्ध आत्म तत्त्व के ज्ञान से अर्थात् सम्यक् क्रिया, सम्यक् ज्ञान तथा उसकी साधना का अभ्यास करवाने के द्वारा सत्य मत्र एव उनकी साधना मोक्ष के असाधारण कारण वनते है।

मनोगुप्ति एवं नमो मंत्र

नित्य नमस्कार का अभ्यास भेदभाव की गहरी नदी पर मजवूत पुल वांधने की क्रिया है इसीलिए 'नमो' पद को सेतु

कहा गया है। 'नमो' पद रूपी सेतु का आश्रय लेने से भेदभाव रूपी नदी का उल्लघन होता है एवं अभेदभाव के किनारे पर पहुँचा जाता है एव डूब जाने का भय नही रहता। भेदभाव को मिटाकर अभेदभाव पर्यन्त पहुँचने का कार्य 'नमो' पद रूपी सेतु की आराधना से होता है। मत्रशास्त्र मे उसे अमात्र पद मे पहुँचाने वाली अर्द्धमात्रा भी कहते हैं। आधी मात्रा मे समग्र ससार समा जाता है एव दूसरी आधी मात्रा सेतु वनकर आत्मा को ससार के उस पार ले जाती है तथा सकल्प-विकल्प से मुक्त करवा कर निर्विकल्प अवस्था तक पहुँचाती है।

'नमो' पद द्वारा मनोगुप्ति साध्य वनती है। मनोगुप्ति के लक्षरण निर्धारित करते समय कहा गया है —

"विमुक्तकल्पनाजालं समत्वे सुप्रतिष्ठितम्।
आत्माराम मनस्तज्ज्ञै मनोगुप्तिरुदाहृता" ॥१॥

अर्थात्—'कल्पना जाल से मुक्ति, समत्व मे सुस्थिति एव आत्मभाव मे परिणति जिससे हो वह मनोगुप्ति है।'

मनोगुप्ति के लक्षरण मे प्रथम मन के रक्षरण के निषेधात्मक एव वाद मे विधेयात्मक दोनो पहलू वताये गये है।

'विमुक्तकल्पनाजालम्' निषेधात्मक पक्ष है एव 'समत्वे सुप्रतिष्ठित' तथा 'आत्माराम मन" विधेयात्मक पक्ष हैं। श्री नमस्कार मत्र के जाप मे भी दोनो पक्षो का समन्वय है।

जो काम मनोगुप्ति द्वारा साध्य है, वही कार्य 'नमो' मत्र की आरावना द्वारा सम्भव होता है। अत मनोगुप्ति एव नमो मत्र एक ही कार्य की सिद्धि करने वाले होने से इस अंश मे परस्पर पूरक वन जाते हैं।

समर्थ की शरण

नमस्कार, वन्दन अथवा प्रणाम सभी दैन्य - भावना के प्रतीक है। जोसर्वऐश्वर्य सम्पन्न है एव सभी का त्राण—रक्षण करने मे समर्थ है, उनका आश्रय लेने हेतु तथा स्वय की दीनता एव साधनहीनता को प्रकट करने हेतु 'नमो' पद का उच्चारण होता है।

जो समर्थ की शरण ग्रहण करता है वही दुस्तर एव दुरत्यय दुःख से पार हो सकता है एव दुरन्त ससार की माया से पार पा सकता है। अन्यत्र भी कहा गया है कि —

दैवी ह्येपा गुणमयी, मम माया दुरत्यया
मामेव प्रतिपद्यन्ते, मायामेतां तरन्ति ते ॥१॥

अर्थात्—'दैवी एव गुणमयी यह मेरी माया दुरत्यय है। जो मेरी शरण स्वीकार करता है वही इस माया से पार पा सकता है।

वर्षा का जल सर्वत्र गिरता है परन्तु वह निचले भू भाग पर ही टिकता है न कि उत्तुग पर्वतो पर। इसी प्रकार प्रभु की कृपा सर्वत्र है पर उसकी अभिव्यक्ति वही होती है जहा दैन्य एव विनम्रता है न कि अहकार अभिमानादि रूप पर्वतीय स्थानो पर।

जीव जब तक दैन्य-श्री से सयुक्त नही होता तब तक उसे भगवत्प्राप्ति नही हो सकती।

भक्ति, प्रीति, अनुराग अथवा प्रेमसाधना मे एक दैन्य की प्रधानता है। कहा है कि —

पीनोऽहं पापपंकेन, हीनोऽहम् गुणसम्पदा।
दीनोऽहं तावकीनोऽहं मीनोऽहं त्वद्गुणाम्बुधौ ॥१॥

मोक्षमार्ग मे कृपा ही मुख्य है। आत्मा स्वर्ग का बल अथवा स्वय की साधना वहाँ काम नही आती।

नख-कर्तनी से जिस प्रकार पर्वत नही भेदा जा सकता पर वह इन्द्र-वज्र से भेदा जाता है वैसे ही पापरूपी पर्वतो को भेदने के लिए भक्तिरूपी वज्र चाहिए। उसकी प्राप्ति नम्रभाव के अधीन है। वह नम्रभाव 'नमो' मन्त्र द्वारा साध्य है।

श्रद्धा एवं भक्ति

श्रद्धा सभी क्रियाओ का मूल है, श्रद्धा का मूल ज्ञान है, ज्ञान का मूल भक्ति है एवं भक्ति के मूल भगवान है। भगवान की शक्ति भक्त के हृदय मे भक्ति पैदा करती है। भक्ति द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त होता है। वह आत्मज्ञान श्रद्धा को पैदा करता है। श्रद्धा क्रिया मे प्रेरक बनती है। अत. श्रद्धा पुरुषतत्र है एव भक्ति वस्तुतत्र है।

भक्ति मे प्रेरक वस्तु की विशेषता है। श्रद्धा मे प्रेरणीय पुरुष की विशेषता है। निमित्त की विशेषता ही भक्तिप्रेरक है। उपादान की विशेषता श्रद्धाजनक है। भक्ति आराध्य मे स्थित आराध्यत्व के ज्ञान की अपेक्षा रखती है। यह श्रद्धा क्रिया एव उसके फल मे विश्वास की अपेक्षा रखती है। यह विश्वास क्रिया करने वाले की योग्यता पर आधार रखता है। जब श्रद्धा एव भक्ति एक स्थान पर मिलते है तब कार्य की सिद्धि होती है।

भगवान के प्रभाव-चिन्तन से भक्ति जाग्रत होती है एव भक्ति के प्रभाव-चिन्तन से श्रद्धा जागती है।

आज्ञा की आराधना श्रद्धा एव भक्ति उभय की अपेक्षा रखती है। आज्ञा पालन के प्रति निष्ठा ही भक्ति है। आज्ञा पालन के प्रति निष्ठा ही श्रद्धा है। भक्ति मे आज्ञा-कारक के

सामर्थ्य की प्रतीति है। श्रद्धा में आज्ञापालक की योग्यता का भाव है।

प्रयत्न की एकनिष्ठा में भक्त का सामर्थ्य निहित है। भगवान का सामर्थ्य उनकी अचिन्त्य शक्तिमत्ता मे निहित है। यदि भगवान मे अचिन्त्य सामर्थ्य नही हो तो भक्त का प्रयत्न विफल है। यदि भक्त का प्रयत्न न हो तो अचिन्त्य सामर्थ्य भी लाभदायक नही होता।

प्रयत्न फलदायी है—ऐसा विश्वास ही श्रद्धा है। कृपा फलदायी है—ऐसा विश्वास ही भक्ति है। कृपा भगवान के सामर्थ्य की सूचिका है। प्रयत्न भक्त की श्रद्धा का सूचक शब्द है। भक्ति के प्रमाण में ही श्रद्धा स्फुरित होती है एवं श्रद्धा के प्रमाण में ही भक्ति फलित होती है।

'चले बिना इष्ट स्थान पर पहुँचा नही जा सकता'—यह श्रद्धा सूचक वाक्य है। "इष्ट स्थल पर पहुँचने के लिए ही चलने की क्रिया होती है"—यह भक्ति सूचक वाक्य है।

इष्ट स्थल मे यदि इष्टत्व की बुद्धि नही हो तो चलने की क्रिया हो ही कैसे सकती है? वैसे ही चलने की क्रिया के बिना इष्ट स्थल पर पहुँचा ही कैसे जा सकता है?

आत्मा महिमाशाली द्रव्य है इसीलिए उसे बताने वाले परमात्मा के प्रति भक्ति जागती है। यह भक्ति क्रिया मे निष्ठा उत्पन्न करती है एव यह निष्ठा प्रयत्न में परिणमित होती है।

श्री नमस्कार मंत्र मे श्रद्धा एव भक्ति दोनो निहित हैं। श्रद्धा नमस्कार की क्रिया पर एव भक्ति नमस्कार्य के प्रभाव पर अवलम्बित है।

'आराध्यत्वेन ज्ञानं भक्तिः'

अर्थात्—"भक्ति एक प्रकार का ज्ञान है" कि जिसमें आराध्यतत्त्व की विशेषता का ग्रहण होता है।

'इदमित्थमेव'। 'अयमेव परमार्थ.'

अर्थात्—'यह वस्तु ऐसी ही है अथवा यही एक परमार्थ है' इस प्रकार का ज्ञान श्रद्धा कहलाती है एव उसमे आराधक की निष्ठा की प्रशसा है।

साध्य एवं साधन में निष्ठा

श्रद्धा तथा भक्ति का आराधक मे होना आवश्यक है फिर भी दोनो मे जो अन्तर है वह इनके ज्ञान मे है।

श्रद्धालु का ज्ञान साधना मे निष्ठा उत्पन्न करता है। भक्तिमान का ज्ञान साध्य मे निष्ठा उत्पन्न करता है। साध्य की श्रेष्ठता का ज्ञान भक्तिवर्द्धक बनता है एव साधना की श्रेष्ठता का ज्ञान श्रद्धावर्द्धक वनता है। श्री नमस्कार मंत्र में साध्य ही सर्वश्रेष्ठ होने से वह सर्वोत्तम भक्ति का उत्पादक है एव साधन सर्वश्रेष्ठ होने से वह सर्वोत्तम श्रद्धा को उत्पन्न करता है। सर्वोत्तम श्रद्धा एवं सर्वोत्तम भक्ति से सम्पन्न क्रिया निशंक सर्वोत्तम फल को प्रदान करती है।

भक्ति उत्पन्न होने में प्रमुख अनुग्रह प्रभु का है। इस अनुग्रह को करने की शक्ति अन्य किसी में भी नही होने से भव्य जीवो के लिए प्रभु ही एक सेव्य, आराध्य एव उपास्य हैं साथ ही एक उनकी ही आज्ञा पालन करने योग्य होती है ऐसी निष्ठा प्राप्त होती है एव इसी का नाम भक्ति है। आज्ञा का पालन करने योग्य "मैं स्वय ही हूँ" ऐसी निष्ठा श्रद्धा है। इस प्रकार श्रद्धा एव भक्ति दोनो के मिलने से जीव की मुक्तिरूपी कार्य-सिद्धि होती है। श्री नमस्कार मन्त्र इन दोनो वस्तुओ की पूर्ति करने वाला होने से भव्य जीवो को प्राणो से भी प्यारा है एवं प्रत्येक श्वास मे सौ बार

संभालने योग्य है। इससे मन का रक्षण होता है, संकल्प विकल्प छूट जाते हैं, समत्वभाव मे स्थिति उत्पन्न होती है एवं आत्मारामता या आत्मस्वरूप में ही रमण करने का अभ्यास होता है।

ऋण मुक्ति का महामन्त्र

नमस्कार ऋणमुक्ति का मन्त्र है। अपने पर ऋण है—ऐसा मानने वाला व्यक्ति अपने आप नम्र वनता है एवं निरहंकार रहता है।

प्रत्येक जन्म मे दूसरो पर कृत अपकार एव दूसरो के स्वय पर हुए उपकारो को याद रखने वाला ही सदा नम्र रहता है एव उपकार के वदले मे प्रत्युपकार करने की भावनावाला रहता है। स्वयंकृत अपकार का बदला समता भाव से सभी प्रकार के कष्ट सहन मे निहित है एवं अपने ऊपर हुए उपकार का वदला आत्मज्ञान से चुकता है। आत्म-ज्ञानी पुरुप विश्व पर जो उपकार करता है, वह इतना बडा होता है कि उसके सामने उस पर दूसरो द्वारा किए गए सभी उपकारो का वदला चुक जाता है।

दु ख एव कष्ट के समय कर्म के विपाक का चिन्तन करने से समता भाव अखण्ड रहता है एवं उससे दूसरो पर किए गए अपकारो का ऋण उतर जाता है।

'नमो' मन्त्र अपकार एवं उपकार दोनो का वदला एक साथ चुका सकता है। उसका कारण उसके पीछे कर्मविपाक का भी विचार है एव आत्मज्ञान प्राप्त करने का भी विचार है। कर्मविपाक का विचार समता द्वारा सभी पापो का नाश करता है। आत्मज्ञान का विचार सभी मंगलों का कारण बनता है।

धर्म मात्र मंगल है। आत्मज्ञान सभी धर्मों का फल है। अत. श्री अरिहतादि के नमस्कार द्वारा होता आत्मज्ञान सभी मगलो मे प्रधान मगल है एव नित्य वर्द्धमान मंगल है।

नम्रता एवं बहुमान

जीव कर्म से बंधा हुआ है यह विचार जिस प्रकार नम्रता को लाता है वैसे ही कर्म से मुक्त हुए पुरुषो के प्रति आन्तरिक बहुमान भी नम्रता को लाता है।

कर्म का विचार पाप का प्रायश्चित करवाता है एव धर्म का विचार पुण्य का बीज बनता है।

'नमो' मन्त्र में कर्म का अनादर है एवं धर्म का आदर है, दूसरो का अपकार करने से जो कर्म का बंध हुआ है उसका स्वीकरण है एवं परोपकार से जो धर्म की प्राप्ति होती है उसका भी श्रद्धापूर्वक स्वीकरण है।

अपने को धर्म प्रदान करने वाले दूसरे हैं। अत उन उपकारियो के लिए नमस्कार जिस प्रकार धर्मवृद्धि का कारण है वैसे ही दूसरो के प्रति किया जाने वाला उपकार भी धर्म की वृद्धि करता है। धर्म को प्राप्त करने एव उसके सम्पादन के लिए भी परोपकार आवश्यक है।

नमस्कार एक ओर तो अपराध को क्षमा करवाने के लिए आवश्यक है तो दूसरी ओर उपकार को स्वीकार करवाने के लिए भी आवश्यक है। नमस्कार द्वारा उपकार का स्वीकरण एवं अपराध की क्षमापना दोनो एक ही साथ सम्भव होती हैं।

अधर्म से छूटने के लिए एव पुन. अधर्माचरण नही करने हेतु नमस्कार आवश्यक है। श्री नमस्कार मत्र सभी पापो का प्रणाशक एव सर्व मगलो का मूल कहा जाता है। उसका कारण है वह पाप के प्रायश्चित्त की वुद्धि से निष्पाप पुरुषों के लिए नमन क्रिया रूप है।

परापकाररहित एव परोपकारसहित होने की बुद्धि से जो नमस्कार किया जाता है वह भावनमस्कार है। वह भावनमस्कार पाप का प्रणाशक एव मंगलवर्द्धक बनता है। भावनमस्कार मे दुष्कृत-गर्हा एव सुकृतानुमोदना निहित है एवं इन दोनो से युक्त होकर आत्मज्ञानी पुरुषो की शरणागति भी निहित है। आत्मज्ञानी पुरुषो की शरणागति आत्मज्ञान को सुलभ बनाती है। श्री नमस्कार मत्र मे आत्मज्ञान एव कर्म विज्ञान दोनो एक ही साथ निहित होने से उसमे सर्वमत्र-शिरोमणिता निहित है।

श्री नवकार मंत्र से पाप का प्रायश्चित होता है एव आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है। इससे उस एक ही मत्र मे आत्म-कल्याण की सिद्धि करवाने वाले सभी अनुष्ठानो का सार आ जाता है।

आधिकारिकता एवं योग्यता

श्री नमस्कार मत्र का जाप एव उसकी अर्थभावना सभी अन्तरायो का निवारण करने वाली होती है एव आत्मज्ञान का कारण बनती है। अत. पापभीरु एवं आत्मार्थी सभी भव्य आत्माओ को उसका निरन्तर स्मरण आनन्दप्रदायक होता है तथा उसके जाप करने वाले एव अर्थभावना करने वाले को सदैव के लिए निर्भय एव निश्चित बनाता है।

श्री नमस्कार मत्र के जाप के लिए तथा उसकी अर्थ-भावना के लिए जो योग्यता चाहिए वह निम्न गुणो के अभ्यास से आती है।

१. भद्रिक परिणति

२. विशेष निपुणमति

३. न्याय मार्गरति

४. दृढ़ निज-वचन-स्थिति

मनुष्य मात्र मे ये चारो गुण आंशिक रूप मे होते ही हैं। उन्हे अधिक से अधिक विकसाते रहने से महामंत्र की आधिकारिकता प्राप्त होती है।

भद्रिकपरिणति मे अक्षुद्रता, मध्यस्थता, अक्रूरता, सौम्यता, दयालुता, दाक्षिण्यता, वृद्धानुसारिता एवं विनीतता मुख्य है।

निपुणमतिता मे दीर्घदर्शिता, विशेषज्ञता, कृतज्ञता, परार्थता, लब्ध-लक्ष्यता आदि मुख्य हैं।

न्यायमार्गरति में निर्दम्भता, लज्जालुता, पापभीरुता, गुणरागिता आदि मुख्य हैं।

वैसे ही दृढ-निज-वचन-स्थिति में लोकप्रियता, सुपक्षयुक्तता आदि गुण मुख्य हैं।

चौदहपूर्व का सार अभेद नमस्कार

चौदहपूर्वी भी अन्तिम समय मे श्री नवकार का स्मरण करते हैं। इसीलिए नवकार को चौदह पूर्व का सार कहा गया है।

नमस्कार द्रव्य-भाव-संकोच रूप है। द्रव्यसकोच काया एव वचन का है। भावसंकोच मन का है। द्रव्यसकोच द्रव्य-नमस्कार रूप है। भावसंकोच भावनमस्कार रूप है। भाव-नमस्कार, परमार्थ नमस्कार एव तात्त्विकनमस्कार एक हीअर्थ को कहते हैं। तात्त्विक नमस्कार अभेद-प्रणिधान रूप है इसी-लिए अभेद प्रणिधान ही चौदह पूर्व का सार है—यह सिद्ध होता है। नमस्कार्य के साथ नमस्कारकर्ता का जो अभेद-एकत्व है, उसका जो प्रणिधान है, वही तात्त्विक नमस्कार है।

परमात्मा को उद्दिष्ट कर स्वयं की आत्मा का तात्त्विक

स्वरूप जिसमे प्रणिधान का विषय बनता है वही अभेद नमस्कार है। उसमें ध्याता एवं ध्येय वे हैं जो ध्यान के साथ एकत्व साधते हैं एव तब वह आत्मा स्वयं ही परमात्म-स्वरूप बन जाती है।

सब कुछ पढने के बाद भी अन्त मे परमात्मपद प्राप्तव्य है, यही सभी प्रयोजनों का मौलिभूत प्रयोजन है एवं सभी क्रियाओ की सफलता भी इसी मे है।

जिसमे आत्मा लीन होती है उसमे आत्मा तद्रूप बन जाती है। परमात्मपद मे लयभाव की वृद्धि होने से आत्मा परमात्मस्वरूप बन जाती है। इसलिए परमात्म-स्मरण सकल शास्त्रो का सारभूत गिना जाता है।

श्री नवकार मंत्र का जो विशेप महत्त्व है उसका एक कारण यह भी है कि इसकी शब्दरचना विशिष्ट है।

उपनिषदो में 'ब्रह्म' को ही 'नम' रूप मानकर उपासना कही गई है। श्री अरिहंतादि पांचो को भी 'नम.' अथवा 'ब्रह्म' रूप मानकर जब उपासना की जाती है तब उपासक तद्रूप बन जाता है। उसे ही सच्ची अर्थभावना कहा गया है। उसी से उपासक की सभी कामनाए विलीन हो जाती हैं अर्थात् पूर्ण हो जाती हैं। कहते हैं कि—

'तन्नम इत्युपासीत, नम्यन्तेऽस्मै कामा'

उपनिषद्

अर्थात्—'नम.' परमात्मा का साक्षात् अक्षरात्मक नाम है। अन्तरग शत्रुओ को नमाने वाला होने से परमात्मा 'नमो' स्वरूप है। अन्तरग शत्रुओ को नमाने वाले परमात्मा का ध्यान जो कोई करता है उसके काम अर्थात् कामनाओ एव काम विकारो का शमित होना स्वाभाविक है। पुनः गुण की पराकाष्ठा तक पहुँचे हुए तभी गिने जाते हैं कि जब उनके ध्यानादि से दूसरो मे ये गुण प्रकट होते हैं एवं विरोधी दोष शमित हो

जाते हैं। इस दृष्टि से "नम्यन्तेऽस्मै कामाः" वाला उपनिषद् वाक्य भी संगत होता है। 'नमो' पद द्वारा परमात्मा की उपासना होती है। यह बात दूसरी भी अनेक रीतियो से संगत होती है।

नमो अरिहंताणं पद मे नमस्कार का स्वामी निश्चयदृष्टि से जैसे नमस्कार करने वाला बनता है वैसे ही व्यवहारनय से नमस्कार का स्वामित्व नमस्कार्य श्री अरिहंत परमात्मा का है। इसीलिए नमस्कार से अभिन्न परमात्मा ही 'नमो' पद से उपास्य वनते है। इस प्रकार पाचों परमेष्ठि 'नमो' पद से उपास्य वनते है।

द्रव्यगुणपर्याय से नमस्कार

नमस्कार आत्मगुण है एव "गुण और गुणी में अभेद है" इस न्याय से नमस्कार आत्मद्रव्य भी है। द्रव्य पर्याय का आधार है। इस दृष्टि से नमस्कार आत्मद्रव्य का शुभपर्याय है। इस प्रकार नमस्कार रूपी आत्मद्रव्य, नमस्कार रूपी आत्मगुण एव नमस्कार रूपी आत्मपर्याय द्वीप, त्राण, शरण, गति एवं आधार है। अर्थात् नमस्कार ससार समुद्र मे द्वीप है, अनर्थमात्र का घातक है, भवभय का त्राता है, चारो गति के जीवों का आश्रय स्थान एव भव रूपी कूप मे पडते हुए जीवो का आलम्वन भूत बनता है। आत्मद्रव्य द्वीप है, आत्मगुण, त्राण, शरण एव गति है तथा आत्मपर्याय भवकूप मे डूबते जीवो के लिए आधार है। अथवा द्रव्य, गुण एव पर्याय से आत्मा ही नमस्कार रूप है। इसीलिए अन्तत गुणपर्याय के आधार-भूत आत्मद्रव्य ही द्वीप, त्राण, शरण, गति एव आधार हैं।

सहभावी पर्याय को गुण कहते हैं, क्रमभावी अवस्था को पर्याय कहते हैं। नमस्कार आत्म-गुण भी है एव आत्म-पर्याय

भी है। गुणपर्याय का आधार द्रव्य है अत आत्मद्रव्य रूप नमस्कार ही ससारसागर मे द्वीप, ससार अटवी मे त्राण, संसार कारागार मे शरण, ससार अरण्य मे गति, ससार कूप मे आधार, अवलम्बन एव प्रतिष्ठा है।

सम्यग्दृष्टि जीवों का त्राण

धर्म के दो प्रकार है—एक श्रुतधर्म तथा दूसरा चारित्र-धर्म। श्रुतधर्म का प्रतीक नवकार है। चारित्रधर्म का प्रतीक श्री सामायिकसूत्र है। एक के ६८ अक्षर हैं, दूसरे के ८६ अक्षर है। देशविरति सामायिक सूत्र के ७६ अक्षर है।

नवकार देवतत्त्व, गुरुतत्त्व तथा धर्मतत्त्व रूप तत्त्व-त्रयी को बताने वाला है इसीलिए नवकार मे नवतत्त्व का ज्ञान है। देवतत्त्व मोक्षस्वरूप है, गुरुतत्त्व मोक्षमार्ग रूप है तथा धर्मतत्त्व मोक्ष को प्राप्त तथा मोक्षमार्ग पर स्थित पुरुषो का बहुमानस्वरूप होने से धर्मतत्त्व रूप है। देवतत्त्व के बहुमान से ससार को हेयता एव मोक्ष की उपादेयता का ज्ञान होता है, गुरुतत्त्व के बहुमान से सवर-निर्जरारूप तत्त्व की उपादेयता तथा आस्रव-बन्ध तत्त्व को हेयता का ज्ञान होता है। धर्मतत्त्व के बहुमान से पुण्यतत्त्व की उपादेयता तथा पापतत्त्व की हेयता का ज्ञान होता है। समग्र नवकार जीवतत्त्व की उपादे-यता का तथा अजीवतत्त्व की हेयता का बोध कराता है। इस प्रकार नवकार मे नवो तत्त्वो का हेयोपादेयता सहित बोध होता है।

नवकार मे हेय तत्त्वो की हेयता का ज्ञान तथा उपादेय तत्त्वो की उपादेयता का ज्ञान इसी प्रकार होता है। पाप, आस्रव तथा बन्ध हेय है, पुण्यानुबधीपुण्य, सवर, निर्जरा तथा मोक्ष उपादेय है; ऐसा सम्यक् बोध नवकार के ज्ञान से होने से सम्यग् दृष्टि जीवो के लिए वह प्राणरूप है।

प्रकाशकज्ञान एवं स्थैर्योत्पादकक्रिया

धर्म मगल है जो दो प्रकार का है एक क्रियारूप तथा दूसरा ज्ञानरूप। ज्ञानरूपमगल के विना अकेला क्रियारूप मगल अथवा क्रियारूपमंगल के विना अकेला ज्ञानरूपमगल मोक्षमार्ग नही वन सकता है।

देव, गुरु एवं धर्म रूपी तत्त्वत्रयी उपास्य है। ज्ञान, दर्शन एव चरित्र रूपी तत्त्व-त्रयी सेव्य है। उपास्य तत्त्व की उपासना नवकार रूपी श्रुतमगल से होती है इसलिए वह ज्ञान स्वरूप है। सेव्य तत्त्व की आराधना श्री सामायिकसूत्र की प्रतिज्ञा से होती है इसलिए वह क्रिया स्वरूप है। एक का मगलपाठ होता है दूसरे की मगलप्रतिज्ञा होती है। मगल पाठ में ज्ञान मुख्य है एव क्रिया गौण है। मगलप्रतिज्ञा मे क्रिया मुख्य है एव ज्ञान गौण है। जहाँ ज्ञान रहता है वहाँ गौण रूप से क्रिया भी निहित है। जहाँ क्रिया मुख्य है, वहाँ गौण रूप से ज्ञान भी निहित है।

नवकार द्वारा पाप नही करने की प्रतिज्ञा का बहुमान होता है। सामायिक द्वारा बहुमान पूर्वक पाप नही करने की प्रतिज्ञा का स्वीकार होता है। ज्ञानमात्र का मूलस्रोत नवकार है। क्रियामात्र का मूलस्रोत 'करेमिभते' है।

क्रिया के कारण तीन योग एव तीन करण हैं। उसका नियमन "करेमिभते" की प्रतिज्ञा से होता है। सामायिक मे सावद्यत्याग एव निरवद्यसेवन की प्रतिज्ञाए तीन करण से एव तीन योग से व्याप्त हैं। सावद्यक्रिया अस्थैर्यनिष्पादक है। उसके त्याग की क्रिया आत्मा मे स्थैर्य उत्पन्न करती है।

ज्ञान प्रकाशक है। क्रिया स्थैर्यजनक है। दोनो मिलकर आत्मसुख के कारण वनते है। नवकार द्वारा नवतत्त्व,

षड्द्रव्य तथा आत्म-अनात्म तत्त्व का ज्ञान दृढ कर सामायिक की क्रिया द्वारा उस ज्ञान का सम्यक् आचरण किया जा सकता है।

नम्रता एवं सौम्यभाव

नम्र जीव ही सुरक्षापूर्वक उन्नति के शिखर पर चढ सकते है।

नम्रता एव सौम्यभाव रूपी दो अश्वो को नमस्कारभाव रूपी रथ मे सयुक्त कर मोक्षमार्ग के प्रवास की शुरुआत हो सकती है। जहाँ नमस्कारभाव नही वहाँ नम्रता नही एव जहाँ नम्रता नही वहाँ सौम्यभाव नही। सौम्यभाव का अर्थ है समभाव। समभाव के विना किसी भी सद्गुण का सच्चा वास आत्मा में नही हो सकता। अपनी हीनता एव कमियो की वेधडक स्वीकृति के विना नमस्कारभाव की झांकी भी हो नहीं सकती। नमस्कारभावरहित कोरी नम्रता अहंकारभाव को जन्म देनेवाली है एव ठगारी होती है।

नमस्कारभाव तीनो जगत के स्वामित्व का वीज है। श्री तीर्थंकर भगवन्त एव श्री सिद्ध भगवन्तो की समस्त ऋद्धि-सिद्धि एव आत्मसमृद्धि इस नमस्कारभाव मे से ही प्रकट हुई है।

नमस्कार भाव का एक अर्थ क्षमायाचना है। क्षमायाचना से चित्त प्रसन्न होना है। अर्थात् चित्त मे से खेद, उद्वेग, विषादादि दोप चले जाते है।

नमस्कारभाव का दूसरा अर्थ कृतज्ञता एव उदारता है। नमस्कारभाव द्वारा पर के उपकार का स्वीकरण होता है एव दूसरो पर उपकार करने की प्रवृत्ति पैदा होती है। इसमे एक का नाम कृतज्ञता है एव दूसरी का नाम उदारता है।

कृतज्ञता गुण द्वारा पात्रता विकसित होती है। जीव की अनादि-काल की अयोग्यता को अर्थात् अपात्रता को शास्त्रकार सहजमल के शब्द से सम्बोधित करते हैं। सहजमल का कारण जीव का कर्म से सम्बन्धित होना है एव कर्म का सम्बन्ध जीव को विपयाभिमुख बनाता है। विपयाभिमुखता स्वार्थ-वृत्ति का ही दूसरा नाम है। नमस्कार भाव स्वार्थवृत्ति का उन्मूलन करता है।

जीव की गुप्त योग्यता को शास्त्रकार 'तथाभव्यत्व' शब्द से सम्बोधित करते हैं। इसका परिपाक जीव को धर्म के साथ सम्बन्धित करता है। नमस्कार भाव द्वारा वह योग्यता विकसित होती है तथा वह धर्म तथा धर्मात्माओ के साथ सम्बन्धित करवाता है। धर्म तथा धर्मी आत्माओ का सम्बन्ध ममत्वभाव (सौम्य गुण) को विकसित करता है। समत्व भाव की वृद्धि परोपकारभाव को उत्तेजित करती है। परस्पर सहाय तथा शुभेच्छा के बिना किसी भी जीव की प्रगति नही हो सकती। यह कार्य शत्रुता से नही वरन् मित्रता से ही हो सकता है।

नमस्कारभाव मित्रता के अभ्यास का अमोघ साधन है। नमन शुरू किया नही कि मित्र मिलने लगते हैं—यह सनातन नियम है। मित्र शुभेच्छा लेकर ही आते है। इस प्रकार परस्पर शुभेच्छा की वृद्धि होने से औदार्यभाव विकसित होता है। इन सबका मूल नमस्कारभाव है। नमस्कारभाव से अभ्यस्त होने का बडा मत्र "नमो अरिहताण" है जो भाव से नित्य इस मत्र का स्मरण करते है उनकी अपात्रता नष्ट होती है, पात्रता विकसित होती है, कर्म का सम्बन्ध घटता है स्वार्थ-वृत्ति घटती है, परार्थवृत्ति वढती है, चित की सकुचितता नष्ट होती है, एव विशालता वढती है साथ ही परिणाम स्वरूप कर्मक्षय होता है तथा परम्परा से मोक्ष मिलता है।

'नमो' पद से शान्ति, तुष्टि एवं पुष्टि

विपयो के राग से होती अशान्ति 'नमो' पद के जाप से टलती है। 'नमो' पद के जाप द्वारा क्षुद्र विपयो के राग के स्थान पर परम परमेष्ठियो के प्रति रागभाव जागृत होता है। परमेष्ठियो के प्रति भक्तिराग विषयो के राग से उत्पन्न होती अशान्ति को टालता है तथा शान्ति को प्रदान करता है।

भोजन द्वारा क्षुधा शान्त होने के साथ ही जैसे शरीर मे आरोग्य तथा बल का अनुभव होता है वैसे ही 'नमो' पद के रटण से विषयाभिलाषा टलने के साथ ही आत्मा को तुष्टि तथा पुष्टि मिलती है।

'नमो' पद मे भक्ति, वैराग्य तथा ज्ञान तीनो एक साथ स्थित है। भक्ति अर्थात् प्रेम, वैराग्य अर्थात् विषयो से विमुखता तथा ज्ञान अर्थात् स्वरूप का बोध। स्वरूप के बोध से बल मिलता है जो पुष्टि के स्थान पर है। भक्ति से प्रेम जागृत होता है जो तुष्टि के स्थान पर है तथा वैराग्य से विषय-विमुखता होती है जो शान्ति स्वरूप है। इस प्रकार 'नमो' पद का जाप आध्यात्मिक 'शान्ति' आध्यात्मिक 'तुष्टि' तथा आध्यात्मिक 'पुष्टि' का कारण बनता है। 'नमो' पद का जाप चन्दन की भांति 'शीतलता' शक्कर की भाति 'मधुरता' तथा कचन की भांति 'शुद्धता' समर्पित करता है। शीतलता शान्तिकर है, मधुरता तुष्टिकर है तथा शुद्धता पुष्टिकर है।

'नमो' पद द्वारा विषयो से विरसता तथा परमेष्ठियो मे सरसता का भाव अभ्यस्त होता है।

पांच-विषय ही ससार है तथा पचपरमेष्ठि ही मोक्ष है। 'नमो' पद विषयो का विस्मरण करवाता है तथा निर्विषयी-निर्विकारी आत्मा का स्मरण करवाता है।

'नमो' यह समझाता है कि अनात्मा से आत्मा का मूल्य अधिक है। 'नमो' पद द्वारा अनात्मभाव की विस्मृति तथा आत्मभाव की स्मृति जागृत होती है।

मोक्षमार्ग मे भावना तथा ध्यान को रागादि दोषो के क्षय हेतु अति उपयोगी माना गया है। 'नमो अरिहताण' मत्र मे 'नमो' पद भावना का उत्पादक है तथा 'अरिहताण' पद ध्यान का साधन है।

विषयो का रस घटाने का कार्य 'नमो' पद की भावना से होता है तथा आत्मरस जगाने का काम श्री अरिहंतपद के ध्यान से होता है। विषयो का स्मरण अनादि अभ्यास के कारण अपने आप होता है। देव गुरु का स्मरण अभ्यास के बल से साध्य है। देव-गुरु के स्मरण का अभ्यास दृढ होने के पश्चात् विषयो का स्मरण अपने आप टल जाता है।

बहिरात्मभाव मे आत्मा का चला जाना एक प्रकार का आध्यात्मिक आत्मघात है। उससे जीवन को बचाने वाला श्री नमस्कार मत्र का जाप है।

भाव नमस्कार

'नमो अरिहताण' अर्थात् 'अरिहतो को नमस्कार' इस पद का तात्पर्यार्थ यह है कि मैं अरिहंतो का दास हूँ, प्रेष्य हूँ, किकर हूँ तथा सेवक हूँ। अरिहत मेरे स्वामी हैं, नाथ हैं, मालिक हैं तथा सत्ताधीश हैं। अरिहतो के निर्देश को, अरिहतो की आज्ञा को, अरिहंतो के कार्य को तथा अरिहतो की सेवा को मैं स्वीकार करता हूँ। मैं यह मानता हूँ कि उनकी आज्ञा का पालन ही मेरा परमधर्म है।

नमस्कार्य की आज्ञानुसार जीवन जीना ही नमस्कारकर्त्ता का शुभभाव है। आज्ञापालन को परमकर्त्तव्य समझने वाला ही सच्चा नमस्कार करने वाला गिना जाता है। आज्ञा

से पराङ्मुखवृत्ति वाले का नमस्कार 'नाम निक्षेप' नमस्कार है। आज्ञा मे सच्चा बहुमानभाव भावनिक्षेप से सच्चा नमस्कार है भावनमस्कार तथा आज्ञापालन का अध्यवसाय एकार्थक है।

नमन करना, परिणमित होना तथा तदाकार होना नमस्कार का भावार्थ है। श्री अरिहतो के विषय मे एकचित्त होना, उनके विषय मे ही मन स्थापित करना, उनका ही ध्यान तथा उनके विषय मे ही लेश्या भावनमस्कार है। भाव से नमना अर्थात् तद्रूप होना तथा तद्रूप परिणमित होना अर्थात् त्रिकरणयोग से उनको ही समर्पित होना, तन, मन तथा धन को उनके ही कार्यो मे प्रयुक्त करना है। उनके कार्य को करने में तीनो लोको का हित है। उस कार्य को अपना कार्य मानना साथ ही मन, वचन तथा काया के योग से उसी मे प्रयुक्त होना ही भावनमस्कार है।

भावनमस्कार एवं आज्ञायोग

'नमो अरिहंताण' के जाप से श्री अरिहतो की आज्ञापालन का अध्यवसाय जागृत होता है। श्री अरिहतो की आज्ञा अर्थात् षड्जीवनिकाय का हित हो ऐसा जीवन जीना। यही श्री अरिहतो के नमस्कार का फल है।

आज्ञापालन के अध्यवसाय का अर्थ है समस्त जीवराशि पर स्नेह का परिणाम, समस्त जीवराशि के हित का अध्यवसाय तथा तदनुसारी जीवन।

प्रभु की आज्ञा पर प्रेम उत्पन्न होने का प्रथम कारण आज्ञाभग की भीति है तथा आज्ञाभग से उत्पन्न होते दुष्ट विपाको का चिन्तन है। आज्ञाभग की भीति द्वारा प्रीति उत्पन्न होती है, प्रीति के बाद भक्ति जागती है तथा तत्पश्चात् आज्ञापालन की रुचि प्रकट होती है। इस रुचिपूर्वक जो

अनुष्ठान होता है वह वचनानुष्ठान कहा जाता है तथा उसके परिणामस्वरूप असंगानुष्ठान की प्राप्ति होती है ऐसा क्रम है। असगानुष्ठान निर्विकल्प चिन्मात्र समाधि रूप है। वह ज्ञान क्रिया की अभेद भूमिका रूप है क्योंकि वह शुद्धउपयोग तथा शुद्धवीर्योल्लास के साथ तादात्म्य भाव को धारण करता है।

अत्यन्त प्रीति पूर्वक होने वाला प्रीतिअनुष्ठान, आदर बहुमान पूर्वक होने वाला भक्तिअनुष्ठान, आगमानुसारी सम्पन्न होने वाला वचनानुष्ठान तथा अतिशय अभ्यास से आगम की अपेक्षा बिना सहजभाव से ही सम्पन्न होने वाला असगानुष्ठान होता है। असगानुष्ठान में योग तथा उपयोग की शुद्धि उसके प्रकर्ष पर्यन्त पहुँची हुई होती है।

षड्जीवनिकायो के हित की बुद्धि से उत्पन्न हुआ श्री अरिहंत भगवन्तो पर प्रीति का परिणाम शुद्ध तथा स्थिर होता है। षड्जीव निकाय के हित का परिणाम सर्व प्रथम भवभीति से उत्पन्न होता है। उसके पश्चात् वह आत्मौपम्यभाव से उत्पन्न होता है।

श्री अरिहतो की भक्ति द्रव्य तथा भाव दोनो से होती है। उसमे भावभक्ति आज्ञापालन स्वरूप है अत भावभक्ति का बीज आज्ञा पालन का अध्यवसाय है। यही अध्यवसाय भाव-नमस्कार की प्राप्ति करवाता है। भाव नमस्कार अन्त मे सर्व पाप वृत्तियो का नाशकर परम मगलपद की प्राप्ति करवाता है।

नमस्कार द्वारा ध्यानसिद्धि

आज्ञा का आराधन मोक्ष के लिए होता है तथा आज्ञा का विराधन ससार के लिए होता है। प्रभु की आज्ञा आस्रवो के त्याग की तथा सवरो के स्वीकार की है। जिन जिन क्रियाओ से आत्मा मे कर्म आता है वह आस्रव है तथा आने वाले कर्म जिससे रुकें वह सवर है।

भव का अन्त या भवभ्रमण प्रभु के अधीन है अथवा प्रभु की आज्ञा के अधीन है। आज्ञा की आराधना मोक्ष का तथा विराधना ही भव का कारण है। सवरभाव आज्ञा की आराधना है। सामायिक सवर है तथा नमस्कार सामायिक का साधन है अत नमस्कार भी सवर है सामायिक से अविरति रूपी आस्रव का सवर होता है। नमस्कार से मिथ्यात्व रूपी आस्रव का सवर होता है। नमस्कार मे भगवान के स्वरूप का चिन्तन होता है इस निश्चय से निज स्वरूप का ही चिन्तन होता है। श्री जिन की पूजा परमार्थ से निज की ही पूजा है। कहा है कि—

अर्थात्—"जिनवर पूजा रे, ते निज पूजना रे"

भगवत्स्वरूप के आलम्बन से आत्मध्यान सहज बनता है। समस्त द्वादशागी का सार ध्यानयोग है। ध्यान द्वारा आत्म स्वरूप की स्पर्शना होती है। उसे समापत्ति कहते है। श्री नमस्कार मत्र द्वारा उस ध्यान की सिद्धि होती है। कहा है कि—

"श्री नमस्कारमंत्रेण सकलध्यानसिद्धि।"

मंत्रसिद्धि के लिए अनिवार्य तत्त्व

पशुत्व दूसरो के भोग पर स्वय जीने की इच्छा करता है। मनुष्यत्व स्वय के भोग से दूसरो को जिलाने की इच्छा रखता है अथवा स्वय जिस प्रकार जीने की इच्छा रखता है वैसे ही सभी जीने की इच्छा रखते है-इस प्रकार समझ कर सभी के साथ आत्मतुल्य व्यवहार करता है।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मान ही तात्त्विक पशुत्व है। ये ही भावशत्रु है। उन भावशत्रुओ का नाश अपनी आत्मा की तथा जगत के जीवो की शान्ति हेतु अनिवार्य है।

'मातृवत् परदारेषु'

—यह भावना काम तथा राग को शमित करती है।

''लोष्टवत्' परद्रव्येषु'

—यह भावना लोभ तथा मोह को वशवर्ती करती है

'आत्मवत् सर्वभूतेषु'

—यह भावना मद, मान, ईर्ष्या असूयादि विकारो को शमित करती है।

शास्त्र कहते है कि क्षान्त, दान्त तथा शान्त आत्मा को ही कोई भी प्रार्थना या मत्र फलप्रद होता है।

अहिंसा के पालन से क्रोध जीता जाता है तथा क्षान्त बना जाता है। सयम के पालन से काम जीता जाता है तथा दान्त बना जाता है। तप के सेवन से लोभ जीता जाता है तथा शान्त बना जाता है। काम को जीतने के लिए 'मातृवत् परदारेषु' की भावना कर्त्तव्य है। लोभ को जीतने हेतु "लोष्टवत् परद्रव्येषु" की भावना कर्त्तव्य है। क्रोध को जीतने के लिए आत्मवत् सर्वभूतेषु की भावना कर्त्तव्य है। लोभ को जितने वाला शान्त आत्मा ही सच्चा तपस्वी है, काम को जीतने वाला दान्त आत्मा ही सच्चा सयमी है तथा क्रोध को जीतने वाला क्षान्त आत्मा ही सच्चा अहिंसक है। मत्रसिद्धि की योग्यता प्राप्त करने हेतु ये तीनो गुण प्राप्त करने चाहिए।

आत्मा ही नमस्कार है

मत्र साधना का महत्त्व अर्थ की दृष्टि से नही पर दूसरी दृष्टि से भी है। 'नमो' श्रद्धासूचक है, सर्वज्ञता का बीज होने से 'अरिह' ज्ञानसूचक है तथा मननक्रिया रूप होने से 'ताण' चारित्र सूचक है। इस प्रकार नमो अरिहताण' मत्र के तीनो पद रत्नत्रयसूचक है। अनुक्रम से तत्त्वरुचि,

तत्त्वबोध तथा तत्त्वरमणता रूप अर्थ को बताता है। यह अर्थभेद रत्नत्रयी की दृष्टि से है। अभेद-रत्नत्रयी की दृष्टि से भी उसका अर्थ घटाया जा सकता है। 'अर्हम्' पद की व्याख्या करते हुए श्री सिद्धहेमवृहद्वृत्ति मे कहा है कि—

"प्रणिधानं चाऽनेन सह आत्मन सर्वत: संभेद. तदभिधेयेन चाऽभेद । अयमेव हि तात्त्विको नमस्कार इति"।

अर्थात्—'अर्हं' पद का प्रणिधान सभेदप्रणिधान है एवं अर्हंपदवाच्य परमात्मस्वरूप की एकता का प्रणिधान अभेद-प्रणिधान है। यह अभेदप्रणिधान ही तात्त्विक नमस्कार है। यहाँ 'एव' द्वारा नमस्कार एव अरिहत का अभेद सूचित किया गया है। जिस प्रकार 'अर्हम्' का अभेदप्रणिधान तात्त्विक नमस्कार है वैसे ही 'त्राण' भी 'अरिहत' परमात्मा ही है। इस प्रकार 'नमो' 'अरिह' एव 'ताण' ये तीनो एक ही अर्थ को सूचित करने वाले बन जाते है।

'अर्हं' वाच्य श्री अरिहत परमात्मा का नमस्कार तथा उससे फलित होता त्राण-रक्षण एक ही आत्मा मे स्थित है। आत्मा ही 'अर्हं' आत्मा ही 'त्राण' तथा आत्मा ही 'नमो' नमस्कार रूप है। दूसरे शब्दो मे आत्मा ही ज्ञान, आत्मा ही दर्शन तथा आत्मा ही चारित्र है। यह अभेद रत्नत्रयी भी नमस्कार के प्रथम पद मे निहित है।

नमस्कार द्वारा विश्व का प्रभुत्व

पांच समवायो का विश्व पर प्रभुत्व है। पांच समवाय अर्थात् पांच कारणो का समुदाय। पाचो कारणो के नाम अनुक्रम से काल, स्वभाव, नियति, कर्म तथा पुरस्कार हैं। चित्त को समत्व भाव की शिक्षा पांच कारणवाद के तत्त्वज्ञान से मिलती है। पाच कारणो का समवाय मानने से दीनता,

अहंकारादि, दोषो का विलोप हो जाता है। अकेला देववाद मानने से दैन्य आता है। अकेला पुरस्कारवाद मानने से अहकार उत्पन्न होता है। अकेला नियति, अकेला काल अथवा अकेला स्वभाववाद मानने से स्वच्छन्दवृत्ति का पोषण होता है। पाचो कारण मिल कर कार्य बनता है ऐसा मानने से एकैकवाद से पुष्ट होते हुए स्वच्छन्दादि दोषो का निग्रह होता है तथा अच्छे बुरे प्रसगो के समय चित्त का समत्व टिका रहता है। ज्यो-ज्यो समत्व भाव विकसित होता है त्यो त्यो कर्मक्षय बढता जाता है। सम्यक्त्व समत्वभाव रूप है अत उसे समकित-सामायिक कहा जाता है। विरति अधिक समत्व सूचक है अत उसे देशविरति तथा सर्वविरतिसामायिक कहते हैं। अप्रमाद इससे भी अधिक समत्व सूचक है। इससे भी आगे अकषायता अयोगतादि उत्तरोत्तर अधिक समत्व रूप होने से अधिकाधिक निर्जरा के कारण है।

विश्व पर पांच समवायो का प्रभुत्व है। अर्थात् समत्व भाव का प्रभुत्व है तथा समत्व भाव पर श्री अरिहतादि चार का प्रभुत्व है। कहा है कि--

काल स्वभाव भवितव्यता,
ऐ सगलां तारा दासो रे।
मुख्य हेतु तू मोक्ष नो,
ऐ मुज सबल विश्वासो रे।
—पू उपा श्री यशोविजयजी महाराज

श्री अरिहत, सिद्ध, साधु तथा केवलिप्रज्ञप्तधर्म-इन चारो के आलम्बन से शुभभाव प्रकट होते हैं। ये शुभभाव पाच समवायो पर प्रभुत्व रखते हैं। अत. विश्व के सच्चे स्वामी श्री अरिहतादि चार है। उनका नमस्कार, नमस्कार करने वाले को समग्र विश्व पर प्रभुत्व प्रदान करवाता है।

पांचों कारणों पर शुभभाव का प्रभुत्व

दुष्कृतगर्हा द्वारा सहजमल का ह्रास होता है। सुकृतानुमोदना के द्वारा तथाभव्यत्वभाव का विकास होता है। शरण गमन द्वारा दोनो ही साधे जा सकते है क्योंकि जिनकी शरणग्रहण की जाती है उनका सहजमल सर्वथा विनष्ट हुआ होता है एवं उनका तथाभव्यत्व पूर्ण रूप से विकसित हुआ होता है। परपुद्गल से सम्वन्धित होने की शक्ति को सहजमल कहते हैं। सभी दुष्कृत इसी शक्ति के परिणाम है। जव उस शक्ति का वीज जल जाता है तव परपुद्गल के सम्पर्क में आने की इच्छा मात्र का विलय हो जाता है। पराधीन सुख को प्राप्त करने की इच्छा नष्ट होने से स्वाधीन सुख को प्राप्त करने की इच्छा विकसित होती है—यही तथाभव्यत्व का विकास है।

स्वाधीन सुख प्राप्त हुओ की शरण अचिन्त्य शक्तिशाली है। वह पराधीन सुख की इच्छा का नाश करवा कर एव स्वाधीन सुख की इच्छा का विकास करवा कर अन्त मे स्वाधीन सुख को सम्पूर्ण रूप से प्राप्त करवाकर ही शान्त होती है।

अनादि निगोद में से जीव को वाहर निकालने वाले श्री सिद्ध भगवन्त हैं। उनका ऋण स्वीकार करने वाला उनके सुकृत का निरन्तर अनुमोदन करता है। वे ऋण वह जव तक चुका नही देता तव तक वह अपने उस दुष्कृत की गर्हा करता है।

श्री सिद्ध भगवन्त के उपकार रूपी सुकृत को एव ससार मे अपने द्वारा दूसरों पर किए जाने वाले अपकार रूप दुष्कृत को जो निरन्तर याद करता है उसे सच्चा दुष्कृतगर्हण होता है। गर्हण सहजमल का नाश करता है एवं अनुमोदन भव्यत्वभाव का विकास करता है। उसके प्रभाव से मुक्ति के पांचों कारण आ मिलते हैं। अत पाचो कारणो पर शुभ भाव का प्रभुत्व है।

द्वैत एवं अद्वैत नमस्कार

परमेष्ठि का अर्थ है परम उत्कृष्ट स्वरूप मे अवस्थित भगवन्त। आत्मा का उत्कृष्ट स्वरूप समभाव मे है। उसमे जो स्थित है, अवस्थित है वे परमेष्ठि कहे जाते हैं।

श्री अरिहत एव सिद्ध केवल पूज्य है, अत देवतत्त्व है। आचार्य, उपाध्याय एव साधु पूज्य भी है एव पूजक भी अत गुरुतत्त्व है। धर्म की आत्मा देव एव गुरुतत्त्व हैं। इन दोनो तत्त्वो की भक्ति धर्म का प्राण है। इस प्राण की रक्षा करने वाले मदिर, मूर्ति एव पूजा आदि धर्म के देह एव वस्त्रालकार है।

वडो के सामने अपनी लघुता एव उनकी गुरुता प्रकट हो वैसा वर्तन करना चाहिए। उसी का नाम नमस्कार है। उसके दो भेद है एक द्वैत एव दूसरा अद्वैत। जब तक विशेप प्रकार की स्थिरता प्राप्त नही हुई हो तव तक उपास्य एव उपासक रूप का द्वैत भाव होता है। यही द्वैत नमस्कार है।

राग द्वेष के विकल्पो का नाश हो जाने से चित्त की इतनी अधिक स्थिरता हो जाती है कि उसमे से द्वैत भाव ही चला जाता है। यह अद्वैत नमस्कार है। उस स्थिति मे स्वय की आत्मा ही उपास्य बनती है एव अपने शुद्धस्वरूप का ही ध्यान हुआ करता है। द्वैतनमस्कार अद्वैतनमस्कार का साधन मात्र है।

सिद्धो के परोक्षस्वरूप को वताने वाले श्री अरिहत है। अत व्यवहारदृष्टि से वे प्रथम हैं। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि पचपरमेष्ठिओ का क्रम पूर्वानुपूर्वी है।

जपक्रिया दृष्टफला है

जाप की क्रिया दृष्टफला—प्रत्यक्ष फल प्रदान करने वाली है। मत्रशक्ति कभी भी गलत साबित नही होती। जिस प्रकार

विजली के प्रवाह मे विजली का सामर्थ्य गुप्तरीति से निहित है वैसे ही मत्र में उसके देवता का दिव्यसामर्थ्य दिव्यतेज गुप्त रीति से निहित होता है। अनुकूल द्योतन द्वारा उसे प्रकट किया जा सकता है। जो साधक की आत्मा को दिव्यता प्रदान करे उसे देव कहते है। देवता, ऋषि, छन्द तथा विनियोग, ये चार वस्तुएं मत्र में महत्त्व की है।

जप को यज्ञ भी कहते है। जपयज्ञ मे होम करने का पदार्थ अहकारभाव है। अहकारभाव के कारण ही जीव का शिवस्वरूप विस्मृत हो गया है। आत्मारूपी देव के समक्ष जीव का अहकारभाव समर्पित करना है। यह क्रिया ही चित्त-प्रसाद को प्रकट करती है।

मन्त्रजाप के साथ मन्त्रदेवता का एवं मन्त्रप्रदाता सद्गुरु का ध्यान भी चित्त मे रहना चाहिए। 'नम' शव्द के उच्चारण होने के साथ ही भाव, वाणी तथा शरीर इष्ट को समर्पित हो जाने चाहिए। उन तीनो पर ममत्व का अभिमान छूट जाना चाहिए। यह अभिमान ज्यो ज्यो छूट जाता है वैसे-वैसे मत्रदेवता के साथ एकता साधित होती है।

जितने अक्षर का मत्र हो उतने लक्ष जाप करने से एक पुरश्चरण होता है। उपास्य देवता के साक्षात्कार के लिए ऐसे पुरश्चरणो की खास आवश्यकता होती है। पुरश्चरण के समय उपासक की अनेक प्रकार की कसौटी होती है। उस समय क्षोभरहित धैर्य धारण करने वाले को मत्रसाक्षात्कार होता है।

स्व पर नियंत्रण प्राप्त करने का महामंत्र

विश्व पर नियत्रण प्राप्त करने हेतु स्व पर नियत्रण प्राप्त करना चाहिए। स्वय की प्रकृति पर नियत्रण प्राप्त करने हेतु अपनी पाचो इन्द्रियो एव छठे मन पर नियन्त्रण करना चाहिए।

इन्द्रियो तथा मन पर काबू जब ही हो सकता है कि जब यह स्पष्ट बोध हो जाय कि उनमे विलसित चैतन्य इन इन्द्रियो तथा मन से पृथक है एव अपनी शक्ति द्वारा सभी का सचालन कर रहा है। जो खाता नही पर खिलाता है, जो पीता नही पर पिलाता है, जो सोता नही पर सुलाता है, जो पहनता नही पर पहनाता है, जो ओढता नही पर उढाता है, जो बैठता नही पर बिठाता है, जो उठता नही पर उठाता है, जो चलता नही पर चलाता है, जो देखता नही पर दिखाता है, जो सुनता नही पर सुनाता है जिसे अपन भूल सकते है पर जो अपने को कभी भूलता नही, जो सभी इन्द्रियो एव मन को चैतन्यपूर्ण करता है एव फिर भी वह सभी से परे है, वही ध्येय है, वही उपास्य है, वही आराध्य है, वही लोक मे मंगल, उत्तम एव शरण्य है। वही स्मरण करने योग्य, स्तुति करने योग्य एव ध्यान करने योग्य है। यह निश्चय जब दृढ होता है तब पाचो इन्द्रियो एव मन पर तथा अपनी समग्र स्वप्रकृति पर जीव काबू प्राप्त कर सकता है।

महामन्त्र की उपासना मे परमध्येय रूप मे उसी परम-तत्त्व की ही एक उपासना विविध प्रकार से होती है। अतः उसका जाप तथा स्मरण सतत करने योग्य है।

'नमो' पद द्वारा परमात्मा के समीप जाया जाता है। 'अरिह' पद द्वारा परमात्मा पकड मे आते हैं। 'ताण' पद द्वारा परमात्मा मे एकाग्रता की वृद्धि होती है।

समग्र तीनो पदो द्वारा तथा उनकी अर्थभावना द्वारा परमात्मा के साथ एकत्व-अभेद का अनुभव होता है। अत 'नमो अरिहताण' महामत्र है।

मत्र का जाप स्थिरचित्त से, स्वस्थगति से तथा मत्रार्थ चिन्तनपूर्वक होना चाहिए। मत्र, मत्रदेवता तथा मत्रदाता गुरु मे दृढश्रद्धा, ये साधना के तीन चरण हैं। यदि एक भी

चरण का भग हो जाए तो साधना पगु हो असफल हो जाती है।

'नमो' पद द्वारा औदयिकभाव का निषेध तब तक करना चाहिए जब तक कि एक भी निषेध योग्य परभाव शेष हो। फिर जो अवशिष्ट रहे वही आत्मा है, अरिहत है एव शुद्ध स्वरूपी परमात्मा है।

समता सामयिक की सिद्धि

सम्यक् दृष्टि जीवो को विश्व की विविधता एव विचित्रता, सवेग एव वैराग्य की वृद्धि हेतु होती है तथा अहिंसा, सयम एव तपस्वरूप धर्म के पालन मे उपकारक होती है।

जीवो की कर्मकृत विचित्रताओ को मैत्र्यादिभाव द्वारा सहना ही अहिंसा का बीज है एव अपने को प्राप्त होती सुख-दु.ख आदि विविध अवस्थाओ को समभाव से सहना ही क्रमश. सयम एव तप का बीज है।

तपोधर्म को विकसित करने हेतु दु ख की भी उपयोगिता है सयम धर्म को विकसित करने हेतु सुख की भी उपयोगिना है। अहिसा के आराधन हेतु जीवो की विविधता भी उपयोगी है।

जीवो को सहना ही अहिंसा है, सुखो को सहना ही सयम है एवं दु खो को सहना ही तप है। जीवो को सहन करने का अर्थ है कि शत्रु, मित्र अथवा उदासीन के प्रति तुल्यभावाभ्यास करना। सुख को सहन करना अर्थात् सुख के समय विरक्त रहना एव दु खो को सहन करने का अर्थ है दु ख के समय दैन्यभाव रहित होना।

जीवो की विविधता में एकता का भाव अहिंसा को विकसित करता है सुखो मे दु ख-बीजता का ज्ञान संयम को विकसित करता है एवं दु.खो मे सुख-बीजता का ज्ञान तपोगुण को विकसित करता है।

यदि दु ख मात्र को समझपूर्वक भोगा जाय तो वह सुख

का बीज है। सुख मात्र यदि बिना समझ के भोगा जाय तो दु:ख का बीज है।

जीव मात्र सत्ता से शिव है एवं चैतन्य सामान्य से जीवो मे एकता का ज्ञान समत्व विकसित करता है। द्रव्य सामान्य से सुख-दु:ख मे अभिन्न एक आत्मा का ज्ञान समता-भाव का कारण वनता है। समान भाव को पुरस्सर करने से समता सामयिक की सिद्धि होती है।

धर्म चित्त की समान वृत्ति मे है। अहिंसा, सयम, तप आदि क्रिया चित्तवृत्ति को एक ही आलम्बन मे टिका कर रखने का साधन है। मत्रजाप की क्रिया भी मनोगुप्ति अर्थात् मन की रक्षा का साधन है। मनोगुप्ति मोक्ष का साधन है। मत्र से प्रतिवद्ध मन मनोगुप्ति का साधन वन कर मोक्ष का साधन वनता है।

सर्वश्रेष्ठ जपयज्ञ

जप द्वारा भगवान का प्रणिधान होता है। भगवान के नाम का जप करने से वाह्य व्यापारो का निरोध होता है। शब्दादि वाह्यव्यापार रुक जाने से आन्तरज्योति प्रकट होती है। उसे प्रत्यक्चैतन्य कहते है। उससे ज्ञानादि गुणो की विशुद्धि होती है अत भक्ति एव श्रद्धा मे उत्तरोत्तर वृद्धि होती है।

शास्त्र कहते है कि विशिष्ट गुणवान् पुरुषो के प्रणिधान से महाफल होता है। यह वात भगवान के नाम का जाप करने से प्रत्यक्ष अनुभव की जा सकती है। भगवान के नाम के जाप द्वारा पापनाश का स्वाभाविक कार्य होता ही है फिर वह जाप व्यग्रचित्त से हो कि एकाग्रचित्त से किन्तु अतीन्द्रिय शान्ति तथा अलौकिक आनन्द का अनुभव तो एकाग्रचित्त में

होते जाप द्वारा ही अनुभूत होता है। नीचे के श्लोक उपर्युक्त अर्थ को ही कहते है.—

एवं च प्रणवेनैतत्, जपात् प्रत्यूहसंक्षय. ।
प्रत्यक्चैतन्यलाभश्च, युक्तमुक्तं पतञ्जले: ॥१॥
रजस्तमोमयाद्दोषाद्विक्षेपाच्चेतसो ह्यमी ।
सोपक्रमाज्जपान्नाश, यान्ति शक्तिहतिं परे ॥२॥
प्रत्यक्चैतन्यमप्यस्मादन्तर्ज्योति: प्रथामयम् ।
वहिर्व्यापाररोधेन, जायमानं मतं हि न: ॥३॥

—द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका

अन्यत्र भी कहा है कि—'सरलता से जपा जा सके ऐसे भगवान का नाम नही जपने वाले एव रसना वशवर्तिनी होने पर भी उसका उपयोग नही करने वाले लोग घोर नरक मे जाते हैं—ऐसा देखकर ज्ञानी पुरुषो को सखेद आश्चर्य होता है।

योगातिशयतश्चायं स्तोत्र कोटिगुण. स्मृत. ।
योगदृष्ट्या वुधैर्दृष्टो, ध्यानविश्रामभूमिका ॥१॥

—द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका

अर्थ—'योगाचार्यो ने प्रभु के जाप को स्तोत्र से भी कोटिगुण फलवाला कहा है। इतना ही नही पर जप को ध्यान की विश्रान्ति-भूमिका कहा गया है। वाह्यजगत् में प्रसृत वृत्तियो को खीचकर अन्तर्मुखी वनाने हेतु जाप जरूरी है। जाप से प्राण तथा शरीर समतोल अवस्था को प्राप्त करते हैं तथा मन स्थिर तथा शान्त होता है। जप वहिर्वृत्तियो का नाश करता है। उसकी कामना वाले जीवो की कामनापूर्त्ति कर अन्त में निष्काम बनाता है।

'नमो' मन्त्र मन को कल्पना जाल से मुक्त कर तथा समत्व में प्रतिष्ठित कर अन्तमे आत्म-निष्ठ वनाता है। जप करने वाले को सर्वप्रथम आसन सिद्ध करना चाहिए। आसन से देह

की चचलता नप्ट होती है। चंचलता रजोगुण तथा तमोगुण से होती है। उसके नष्ट होने पर मन तथा प्राण का निग्रह सरल वनता है।

'अरिह' आत्मा का सकेत है तथा 'नमो' प्राणो का सकेत है। 'ताण' पद दोनो की एकता को वताने वाला चिह्न है।

'नमो' द्वारा प्राण अरिह रूपी आत्मा से सयुक्त होता है तथा उससे त्राणशक्ति उत्पन्न होती हैं।

इन्द्रियो को विपयो से शान्त कर आत्मा के प्रति होमने का कार्य 'नमो' मन्त्र द्वारा साधा जाता है। इसीलिए उसे सभी प्रकार के यज्ञो मे श्रेष्ठयज्ञरूप मे स्थान मिलता है।

नमस्कार द्वारा वोधि एवं निरूपसर्ग

'नमो' का अर्थ है—वदन, पूजन, सत्कार तथा सम्मान। उनके परिणामस्वरूप वोधि तथा निरुपसर्ग अवस्था प्राप्त होती है। 'नमो' पद निरुपसर्ग पर्यन्त के लाभ का हेतु है, यह निर्णय, श्रद्धा, मेधा, धृति, धारणा तथा अनुप्रेक्षा से होता है। ये श्रद्धादि साधन उत्कटइच्छा, प्रवृत्ति, स्थैर्य तथा सिद्धि के कारण वनकर नमस्कार द्वारा निरुपसर्गपद को प्रदान करवाते है।

निरुपसर्गपद अर्थात् जहाँ जन्ममरण आदि उपसर्ग नही हो ऐसा मोक्षस्थान। वन्दन अर्थात् अभिवादन तथा मन, वचन तथा काया की प्रशस्तप्रवृत्ति। पूजन अर्थात् पुष्पादि द्वारा सम्यक् अभ्यर्चन। सत्कार अर्थात् श्रेष्ठ वस्त्रालकारादि द्वारा पूजन। सन्मान अर्थात् स्तुति, स्तोत्रादि द्वारा गुणगान। उसके परिणामस्वरूप वोधि अर्थात् जिन-धर्म की प्राप्ति। वन्दन, पूजन, सत्कार, सन्मान आदि जव श्रद्धा द्वारा होते हैं वलात्कारादि द्वारा नही, मेधा द्वारा होते हैं पर जडचित्त से

नही, धृति से होते है पर आकुल व्याकुलता से नहीं, धारणा से होते है पर शून्यचित्त से नही तथा अनुप्रेक्षापूर्वक होते है पर मात्र क्रिया रूप मे नही, तभी वे भाव रूप बनते है एव बोधि तथा निरुपसर्ग अवस्था का कारण बनते है।

नवकार के प्रथमपद का अर्थ

नवकार के प्रथम पद का अर्थ यह है कि 'अरिहं' 'अरहं' एव 'अरुह' को नमस्कार—त्राणस्वरूप है।

'अरिह' प्रभु को धर्मकाय अवस्था को कहते है। 'अरह' प्रभु की कर्मकाय अवस्था को कहते है। 'अरुह' प्रभु की तत्त्व-काय अवस्था को कहते है। धर्मकाय अवस्था जन्म को जिताने वाली होती है। कर्मकाय अवस्था जीवन को जिताने वाली होती है। तत्त्वकाय अवस्था मृत्यु को जिताने वाली होती है।

जन्म, जीवन एव मरण इन तीनो अवस्थाओ पर जिन्होने विजय प्राप्त की है वे अरिहं है। सस्कृत अर्हत् शब्द के प्राकृत मे तीन रूप हैं। ये ही क्रमश. अरिह, अरह एवं अरुह है।

'अर्हं' शब्दब्रह्म है अत परब्रह्म का वाचक है। परब्रह्म चैतन्य परसामान्य से एक रूप है। उसे नमस्कार का अर्थ है तद्रूप परिणमन। यह परिणमन निर्विकल्प-चिन्मात्र-समाधि रूप है। अतः उससे भव का नाश होता है। 'अरिह', 'अरहं' अथवा 'अरुहं'—ये शब्द शुद्ध आत्मस्वरूप के बोधक होने से श्रुतसामायिक की प्राप्ति करवाते हैं। श्रुतसामायिक सम्यक्त्व सामायिक की प्राप्ति का कारण है।

भाव से किया गया श्री अरिहतो का नमस्कार सम्यक्त्व सामायिक रूप है क्योकि उसमे आत्मतत्त्व की अभेदभाव से प्रतीति है। इस प्रतीति का फल सर्वविरतिसामायिक, अप्रमत

भाव एव अकषायभाव की प्राप्ति करवा कर अन्त मे सयोगी तथा अयोगीकैवल्य अवस्था को प्रदान करवाता है। इसलिए उसमें साधुनमस्कार तथा सिद्धनमस्कार आ जाते हैं।

भाव नमस्कार एक अपेक्षा से सग्रहनय की सामायिक है। उसमे स्वरुपास्तित्व तथा सादृश्यास्तित्व रूप मे आत्मतत्त्व की एकता का भान होता है। यह भान अनादि अज्ञान ग्र थि का छेदन करता है। अनादिअ ज्ञानग्रथि का छेद होने से कुदेव, कुगुरु तथा कुधर्म मे सुदेव, सुगुरु तथा सुधर्म की बुद्धि उत्पन्न नही होती तथा अनतानुवधी कषायजन्य हिंसादि पापस्थानो का सेवन नही होता है। पुन सुदेव, सुगुरु सुधर्म तथा उन तीनो तत्त्वो को मानने वाले श्री चतुर्विधसघ मे तथा सार्धमिको की भक्ति में प्रमाद नही होता।

चैतन्य पर-सामान्य द्वारा आत्मतत्त्व की एकता का बोध होने से वैर-विरोध का नाश होता है, समग्र जीवराशि पर स्नेहपरिणाम की वृद्धि होती है; दान, दया, परोपकारादि गुणो का विकास सहज बनता है तथा अल्पकाल मे मुक्ति के अनल्प सुखो का लाभ होता है।

यह समग्र लाभ श्री नमस्कार मत्र के प्रथमपद की अर्थ-भावना के साथ होता जाप प्रदान करवाता है अत उसका जैसे हो वैसे विशेष आदर करना चाहिए।

तीन गुणों की शुद्‌ध

मन-वचन काया के योग तथा ज्ञान दर्शन-चारित्र स्वरूप आत्मा के गुण आदि नवकार के प्रथमपद के स्मरण से शुद्ध होते हैं। तीनो योगो की शुद्धि से देह की वात-पित्त-कफरूपी तीन धातुओ की विषमता की शुद्धि होती है तथा ज्ञानदर्शन-चारित्ररूपी आत्मा की तीन धातुओ (दधति धारयन्ति जीव

स्वरूपमिति धातव. सम्यग्ज्ञानादयः—धर्म बिन्दु अ० ८ सू० ११ टीका) अर्थात् तीन गुणो की भी शुद्धि होती है। कहा है कि —

वातं विजयते ज्ञान दर्शनं पित्तवारणम् ।
कफनाशाय चारित्रं धर्मस्तेनामृतायते ॥१॥

—पू.उपा श्री मेघविजयजी महाराज कृत अर्हद्गीता ॥६।१५॥

अर्थात्—ज्ञान से वात दोष जीता जाता है, दर्शन से पित्त दोष जीता जाता है । चारित्र से कफ दोष जीता जाता है । इससे धर्म अमृत के समान काम करता है ।

रागद्वेप-मोह, आत्मा की ज्ञानादि धातुओ के वैपम्य से उत्पन्न होने वाले दोष है। वे अनुक्रम से ज्ञान-दर्शन-चारित्र गुण द्वारा जीते जाते हैं। साथ ही साथ क्रमश मन, वचन तथा काया के योग भी शुद्ध होते है क्योकि ज्ञान मे मनोयोग की प्रधानता है, दर्शन मे स्तुति-स्तोत्रादिमय पूजा की मुख्यता होने से वचन योग की प्रधानता है चारित्र मे कायिक क्रियाओ की मुख्यता होने से काययोग की प्रधानता है। इस प्रकार विचारने से देह के वातादिजन्य तीनो दोषो को तथा आत्मा के रागादिजन्य तीनो दोषो को–विकारो को शुद्ध करने की शक्ति नवकार के प्रथम पद के सात अक्षरमय एक वाक्य मे, अर्थात् उसके तीनो पदो मे भी निहित है ।

'नमो' पद द्वारा मनोयोग की तथा ज्ञानगुण की शुद्धि होती है। अत राग-दोष जीते जाते हैं ।

'अरिह' पद द्वारा वचनयोग की तथा दर्शनगुण की शुद्धि होती है। अत द्वेषदोष जीता जाता है ।

'ताण' पद द्वारा काययोग की तथा चारित्रगुण की शुद्धि होती है अत मोहदोप जीता जाता है।

तीनो योगों तथा उनके द्वारा अभिव्यक्त होते ज्ञानादि तीनों गुणो द्वारा वात-पित्त-कफ के दोष तथा राग-द्वेप-मोह के दोष भी नष्ट होते है। अर्थात् शरीर तथा आत्मा दोनो ही की एक साथ शुद्धि करवाने का गुण नवकार के प्रथम पद के जाप मे स्थित है, वैसे ही उपलक्षण से धर्म के प्रत्येक अग के सम्यक् आराधन मे वह शक्ति निहित है।

'नमो' पद की गम्भीरता

'नमो' मंत्र मे नवधा भक्ति निहित है। 'नमो' मत्र द्वारा नाम का श्रवण, कीर्तन तथा स्मरण होता है साथ ही आकृति का पूजन, वन्दन तथा अर्चन होना है। द्रव्यनिक्षेप से परमात्मा की सेवा तथा भक्ति होती है तथा भावनिक्षेप से परमात्मा के प्रति आत्मनिवेदन अथवा सर्वसमर्पण होता है।

नवकार सर्वमंगलो मे प्रथममगल है। पाप, अशुभ, कर्म तथा सभी मलो को गलाने वाला मगल होता है, उसमे भी उत्कृष्ट पचमगलस्वरूप नवकार है।

नवकार द्वारा वाह्य-अभ्यन्तर अथवा द्रव्य-भावमल नष्ट होते है। अज्ञान तथा अश्रद्धा ही भावमल है। नवकार द्वारा आत्मा का अज्ञान टलता है तथा परमतत्त्व का ज्ञान होता है।

नवकार द्वारा धर्मफल की अश्रद्धा टलती है तथा श्रद्धा जागृत होती है। नवकार, मिथ्यात्व के तथा अज्ञान के परिणामो को गलाता है विनष्ट करता है, हनन करता है, शुद्ध करता है तथा विध्वंस करता है; सम्यक्त्व के तथा ज्ञान के परिणामो को लाता है, उत्पन्न करता है, सर्जित करता है, पुष्ट करता है तथा वर्द्धित करता है अप्रतीत की प्रतीति करवाता है; अनिर्णीत का निर्णय करवाता है, आत्मतत्त्व

अप्रतीत है उसकी प्रतीति करवाता है. वैसे ही धर्मतत्त्व अनिर्णीत है उसका निर्णय करवाता है।

कम से कम प्रयत्न से अधिक से अधिक फल लाने की शक्ति नमो मत्र मे है। 'नमो' पद मे मैत्री, प्रमोद, कारुण्य तथा माध्यस्थ्य भावनाओ के साथ अनित्य अशरण संसार, एकत्व, अन्यत्वादि भावनाए समाविष्ट हो जाती हैं। अत प्रथम पद अति गभीर है।

नवकार में अष्टांग योग

नमस्कार जिस प्रकार मोक्ष का बीज है वैसे ही अनमस्कार संसार का बीज है। नमनीय को नही नमन करना तथा अनमनीय को नमन ससार वृक्ष का बीज है। अनमनीय को अनमन तथा नमनीय को नमन धर्मवृक्ष का बीज है। नमनीय को नमस्कार सभी दुखो का तथा पापो का नाशक है। नमनीय को अनमस्कार, सभी दुखो का तथा पापो का उत्पादक है। एक अग्रेज लेखक ने ठीक ही कहा है कि "प्रार्थना सयोगो को सुधारती है। अप्रार्थना सयोगो को बिगाडती है, दोनो मे से कोई निष्क्रिय-निष्फल नहीं।"

नवकार मे तप है, स्वाध्याय है तथा ईश्वरप्रणिधान है। तप से शरीर सुधरता है, स्वाध्याय से मन सुधरता है तथा ईश्वरप्रणिधान से आत्मा सुधरती है।

परमात्मा के समीप बसने हेतु प्रथम अनात्मा के सग से मुक्त होना चाहिए। आसन शरीर का सग छुडवाते हैं। प्राणायाम प्राणो पर नियमन लाता है। प्रत्याहार इन्द्रियो का सग छुडवाता है। धारणा, ध्यान तथा समाधि अनुक्रम से मन, बुद्धि तथा अहकार का सग छुडाते है। नवकार मे आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि की साधना है। उसके साथ यम-नियम भी साधे जाते हैं। नियम आन्तर-

शान्ति के लिए है तथा यम वाह्य शान्ति के लिए है। नवकार से वाह्य-आन्तर सम्बन्ध सुधरते है।

इष्टदेवता को नमस्कार एवं परम्पर फल

इष्टदेवता को नमस्कार किए विना कोई भी आत्मा श्रुत-ज्ञान का पार नही पा सकता है। यह पचमगल इष्टदेवता को नमस्कार स्वरूप है। इसलिए श्रुतज्ञान का पार पाने के इच्छुक को निरन्तर उसका आलम्वन लेना चाहिए--ऐसा श्री महानिशीथसूत्र मे प्रतिपादित किया हुआ है।

श्रुतज्ञान से जीवादि तत्त्वो का वोध होता है। इमसे दया की लगन उत्पन्न होती है। सर्व जीव मेरी आत्मा के समान हैं-ऐसी स्थिरवुद्धि उत्पन्न होने से जीवो की सघट्टना, परिताप-नादि पीडा का परिहार होता है। इमसे आस्रव द्वार का विवर्जन होता है, सवर भाव की प्राप्ति होती है एव अत्यन्त विपयतृष्णा के त्याग रूप दम तथा तीव्र क्रोधकण्डूति के त्यागरूप शमगुण का लाभ होता है।

अकपायता मे सम्यक्त्वगुण का लाभ होता है एव उससे जीवादि पदार्थों का सदेह-विपर्यास रहित सवेदनात्मक विशिष्ट अनुभवज्ञान होता है। इस प्रकार का ज्ञान होने से अहितकारी आचरण का त्याग एव ज्ञान–ध्यानादि हितकारी आचरण मे उद्यम होता है तथा सर्वोत्तम क्षमादि दशविध यति–धर्मो मे आसक्ति होती है जिससे सर्वोत्तम मृदुतादि गुणो का पालन होता है।

स्वाध्याय-ध्यान सहित सर्वोत्कृष्ट मयम धर्म का पालन परम्परा से मुक्ति सुख प्रदान करवाता है। इन सवका मूल इष्ट देवता को नमस्कार है तथा इष्ट देवता के नमस्कारपूर्वक होता

हुआ सामायिकसूत्र से लगाकर बिन्दुसार पर्यन्त श्रुतज्ञान का आराधन है।

पंचनमस्कार रूपी परमधर्म

"पंच-नमुक्कारो खलु, विहिदाण सत्तिओ अहिसा च।
इन्दियकसायविजओ, ऐसो धम्मो सुहपओगो ॥१॥"

—उपदेशपद गा० १६८

अर्थात्—'नर नारकादि परिभ्रमण रूप ससार ही पारमार्थिक व्याधि है। सभी देहधारी प्राणियो के लिए यह व्याधि साधारण है। शुद्ध धर्म उसका औपध है।' गुरुकुल मे वसने से एव गुरु आज्ञानुसार जीवन जीने से शुद्ध धर्म की प्राप्ति होती है। शुद्ध धर्म के चार लक्षण हैं (१) विधियुक्त दान, (२) शक्त्यनुसारी सदाचार, (३) इन्द्रिय-कपाय का विजय, (४) पचपरमेष्ठि नमस्कार।

अन्यत्र धर्म के चार प्रकार दान, शील, तप एव भाव, कहे गये है। वे ही इस गाथा मे भिन्न प्रकार से कहे गये हैं। विधियुक्त दान ही दानधर्म है, शक्त्यनुसारी सदाचार ही शील धर्म है, इन्द्रिय कपाय का विजय ही तप धर्म है एव पचपरमेष्ठि नमस्कार ही भावधर्म है।

भाव रहित दानादि जिस प्रकार निष्फल कहे गए हैं वैसे ही पचनमस्काररहित दान भी निष्फल ही है। अत सभी धर्मों को सफल बनाने वाला पच नमस्कार ही परम धर्म है।

मंगल, उत्तम एवं शरण की सिद्धि

नमस्कारभाव आत्मा को मन की आधीनता से मुक्त करता है। मन को आत्माधीन बनाने की प्रक्रिया नमस्कार-भाव मे निहित है। धर्म की अनुमोदना रूप नमस्कार ही भाव-धर्म है। दूसरो का आभार नही मानने मे कारणभूत कृपणता

दोष है। सम्यग्दृष्टि के मन मे नमस्कार भाव ही सद्देव है, सम्यग्ज्ञानी के मन मे सद्गुरु है एव सम्यक् चारित्री के मन मे सद्धर्म है। नमस्कारभाव के विना मानसिक भेदभाव टलता नही एव जब तक वह नही टलता है तब तक अहकार भाव गलता नही है। अहंकार का गलना ही भेदभाव का टलना है। भेदभाव टले बिना एव अभेदभाव आए बिना जीव, जीव को जीव रूप मे कभी पहचान नही सकता है, सम्मानित नही कर सकता है एव न चाह सकता है।

भेदभाव को टालने का एव अभेदभाव को साधने का सनातन साधन 'नमो' पद है। 'नमो' पद रूपी अद्वितीय साधन द्वारा जीव अपनी योग्यता को विकसित करता है एव अयोग्यता को टालता है। योग्यता के विकास द्वारा रक्षण होता है एव अयोग्यता टलने से विनाश रुकता है।

अरिहतो को किया हुआ नमस्कार भावशत्रुओ का हनन करता है, योग्यता प्रदान करता है एव विनाश को रोकता है। भावशत्रुओ के नाश से मगल होता है। योग्यता के विकास से उत्तमता मिलती है एव विनाश के अटकने से शरण की प्राप्ति होती है। नमस्कार से मगल, उत्तम एव शरण—इन तीनो अर्थों की सिद्धि होती है।

मंत्रचैतन्य प्रकट करने वाला मंत्र

देवता, गुरु एव आत्मा का जो मनन करवाता है एव जो मनन द्वारा जीव का रक्षण करे वह मत्र है। मत्र एक ओर मन एव प्राण का आत्मा के साथ सयोजन करवाता है एव दूसरी ओर मनन द्वारा देवता एव गुरु के साथ आत्मा का ऐक्य सधवाता है। मंत्राक्षरो का सम्बन्ध मन एव प्राणो के साथ है।

मंत्र के अर्थ का सम्बन्ध देवता एव गुरु के साथ है । गुरु, मंत्र एव देवता तथा आत्मा, मन एव प्राण इन सबका ऐक्य होने से मन्त्रचैतन्य प्रकट होता है तथा मन्त्रचैतन्य प्रकट होने से यथेष्ट फल की सिद्धि होती है ।

देवता एव गुरु का सम्बन्ध सकल जीवसृष्टि के साथ है अत मत्र चैतन्य विश्वव्यापी बन जाता है । इस प्रकार परमेष्ठि नमस्कार समत्वभाव को विकसित करता है । समत्वभाव का विकास ममत्वभाव को दूर कर देता है । ममत्वभाव के नाश से अहंत्व मिट जाना जाता है । समत्वभाव के विकास से अर्हत्व प्रकट होता है ।

परमेष्ठि नमस्कार सर्व मगलो मे प्रधान श्रेष्ठमगल है साथ ही नित्य वर्द्धमान तथा शाश्वत मगल है क्योकि वह जीव को अह-ममभाव से मुक्त करता है तथा जीव मे अर्हंभाव को विकसित करता है, स्वार्थवृत्ति दूर करता है तथा परमार्थवृत्ति का विकास करता है । पुन. पुन परमेष्ठि नमस्कार द्वारा देव, गुरु, आत्मा, मन तथा प्राण का ऐक्य साधित होता है तथा मत्रचैतन्य प्रकट होता है ।

अनन्तर-परम्पर फल

पच नमस्कार का अनन्तर फल सम्यग्-दर्शनादि की प्राप्ति, मिथ्यात्व, अज्ञान तथा अविरति आदि का नाश तथा परम्पर फल स्वर्गापवर्ग रूप मगल का लाभ है ।

पाप का नाश अर्थात् पुद्गल के प्रति मोह का नाश है तथा मगल का आगमन अर्थात् जीवो को जीवत्व के प्रति स्नेह का आकर्षण । पुद्गल के प्रति विगतरति तथा जीवो के प्रति विशिष्टरति ही नमस्कार के प्रति अभिरति का फल है । यह नमस्कार पुद्गल के प्रति नमनशील तथा चैतन्य के प्रति

अनमनशील जीव को चैतन्य के प्रति नमनशील तथा पुद्गल के प्रति अनमनशील बनाता है।

पच परमेष्ठि पुद्गल के प्रति विरक्त एव चैतन्य के प्रति अनुरक्त हैं, इसी से उनको नमन करने वाला भी क्रमश जड के प्रति विरक्ति वाला तथा चैतन्य के प्रति अनुरक्ति वाला बनता है।

पुद्गल का विराग जीव को काम, क्रोध तथा लोभ से मुक्त करता है तथा चैतन्य का अनुराग जीव को शम, दम तथा सतोषयुक्त करता है। यह चैतन्य हितकर होने से नमनीय है तथा यह जड अहितकर होने से उपेक्षणीय है। चैतन्य सवेदन से युक्त है एव जड सवेदन शून्य है। सवेदन शून्य के प्रति चाहे जितना ही नम्र बना जाय पर वह सब व्यर्थ है। संवेदनशील के प्रति नम्र रहने से सवेदन शक्ति प्राप्त होती है।

सवेदन का अर्थ है स्नेह तथा स्नेह का अर्थ है दया, करुणा, प्रमोद सहाय तथा सहयोगादि।

जिससे उपकार होना तीनो काल मे शक्य नही ऐसे जड तत्त्व के प्रति नमन करते रहना ही मोह, अज्ञान तथा अविवेक है। जिससे उपकार होना शक्य हो उसे ही नमन करने का अभ्यास करना तथा उसे स्मरण पथ मे कायम रख नम्र रहने मे ही विवेक है, समझदारी है तथा बुद्धिमत्ता है।

नवकार से जड के प्रति उदासीनता तथा चैतन्य के प्रति नमनशीलता अभ्यस्त की जाती है।

योग्य बनो एवं योग्यता प्राप्त करो

सवेदनशील के प्रति सवेदन धारण करने से योग्यता प्रकट होती है। सवेदन शून्य जड पदार्थों के प्रति ममत्व रखने से योग्यता नष्ट होती है तथा अयोग्यता प्रकट होती है।

जीव जड को अनन्तकाल तक नमा है पर यह नमस्कार निष्फल गया है। चेतन को एक वार भी सच्चे भाव से नमे तो वह सफल हो जाता है। चेतन को नमने का अर्थ है पिण्ड मे देह के प्रति आदर छोड आत्मा के प्रति आदर रखना तथा ब्रह्माण्ड मे पुद्गल मात्र के प्रति राग छोड जीव मात्र के प्रति राग धारण करना। राग धारण करने का अर्थ है सवेदन-शील बनना।

जो सवेदनशील हैं उनके प्रति ममत्व वताने से सभी प्रकार की आवश्यकताएं बिना मांगे पूर्ण होती है।

सभी प्रकार के पाप की उत्पत्ति पुद्गल के राग से उत्पन्न होती हैं तथा सभी प्रकार के पुण्य की उत्पत्ति चैतन्य के बहुमान से होती है। नमस्कार से चैतन्य का बहुमान होता है। अत वह सभी प्रकार के मगल की उत्पत्ति का कारण है। नवकार पाप का नाशक तथा मगल का उत्पादक बनता है क्योकि उसमें चैतन्य का बहुमान है तथा जड का असम्मान है। कर्म तथा कर्मकृत सृष्टि ही जड है। उसका अन्त करने वाले परमेष्ठि हैं। अत उनको किया गया नमस्कार जडसृष्टि के राग को शमित करता है तथा चैतन्यसृष्टि के प्रेम को विकसित करता है।

नमस्कार द्वारा पाप का मूल पुद्गल का राग नष्ट होता है तथा धर्म का मूल चैतन्य का प्रेम प्रकट होता है अत वह उपादेय है। चैतन्य विश्व की सर्वश्रेष्ठ सत्ता है। नवस्कार मे इस सर्वश्रेष्ठ सत्ता को नमस्कार है तथा उनको नमस्कार है जिन्होने इस सर्वश्रेष्ठ सत्ता को नमनकर शुद्ध चैतन्य प्रकट किया है। इतना ही नही पर उनको भी नमस्कार करने वाले सभी विवेकी जीवो की सर्वश्रेष्ठ क्रिया का अनुमोदन है तथा क्रियाजन्य पापनाश एव मगललाभ रूपी सर्वश्रेष्ठ

फल का भी स्मरण तथा अनुमोदन है। यह स्मरण जितनी वार अधिक किया जाय उतना ही अधिक लाभ होता है--यह वात निश्चित है।

द्रव्यमगल सदिग्ध फल वाले है। भावमगल असदिग्ध फल वाले हैं। यह नवकार सभी भावमगलो का भी नायक है। नायक का अर्थ है कि जिसके अस्तित्व मे ही दूसरे मगल भाव-मगल वनते हैं।

मगल के मगल वने रहने मे कारण चैतन्य की भक्ति एवं जड की विरक्ति है। नवकार की मगलमयता चैतन्य के आदर मे तथा जड के अनादर मे है। जडतत्त्व का प्रेम जीव को दुख दायक होता है। चैतन्यतत्त्व का प्रेम जीव को सुखदायक होता है।

नमस्कार रूपी रसायन का पुन पुन सेवन जड के प्रति आसक्ति दूर करता है तथा चैतन्यतत्त्व की भक्ति विकसित करता है अत वह सर्व मगलो का मागल्य तथा सर्व कल्याणो का कारण है।

हितैषिता ही विशिष्ट पूजा

अयोग्य को नमन करने वाले तथा योग्य को नही नमन करने वाले को ऐसी योनियाँ मिलती है कि जिसमे अनिच्छा से भी सदा नमन करना पड़ता है। वृक्ष के तथा तिर्यञ्च के भव इसके प्रत्यक्ष उदाहरण है। नमस्कार से धर्मवृक्ष का मूल सीचा जाता है। साधुधर्म तथा गृहस्थ धर्म इन दोनो प्रकार के धर्मो के मूल मे सम्यक्त्व है तथा वही देवगुरु को नमस्कार रूप है।

माता पिता को नमन ही सतताभ्याम है, देवगुरु को नमन ही (देवगुरु आदि प्रशस्त विषयो का अभ्यास) विषयाभ्यास है

तथा रत्नत्रयी को नमन ही भावाभ्यास है। यह त्रिविध नमन-क्रिया उत्तरोत्तर आत्मोन्नति हेतु प्रक्रिया है।

छोटा वडे को नमन करता है यह ससार का क्रम है। इसी प्रकार वड़ा छोटे को (छोटा दो हाथ जोडकर वडे को नमन करता है इसी प्रकार भले ही) नमन नही करे पर अपने हृदय मे छोटे को अवश्य स्थान प्रदान करता है, उसका हित चिन्तन करता है, उसे सन्मार्ग मे सयुक्त करता है तथा जिस प्रकार उसका कल्याण हो वैसा विचार करना है—यह भी एक प्रकार का नमस्कार भाव है।

अर्हं त्रिभुवनपूज्य हैं, क्योंकि वे त्रिभुवन हितैषी है। अपने उपकारी को भूल जाना अहंकार है तथा अपने उपकारी को जीवन भर याद रखना ही नमस्कार है। अहकार पाप का मूल है तथा नमस्कार मोक्ष का मूल है। जैसे दवा के लागू पडने पर दर्द कम पड़ता है वैसे ही नमस्कार लागू पडने पर अहंकार कम हो जाता है। अहंकार का अर्थ है स्वार्थ का भार। जब तक वह नही घटता है तव तक नमस्कार फलान्वित नही कहा जा सकता है।

अपने सुख का विचार ही स्वार्थ है। स्वार्थ का दूसरा नाम तिरस्कार है। सभी के सुख का विचार ही परमार्थ है। इसका दूसरा नाम नमस्कार भाव है। शरीर के अणु अणु से तिरस्कार रूपी चोरो को भगा देने हेतु नमस्कार को अस्थिमज्जा वनाना चाहिए।

नमस्कार का प्रथम फल पापनाश अथवा स्वार्थवृत्ति का नाश है। दूसरा फल पुण्यवन्ध-शुभ का अनुबन्ध है। नमस्कार से पाप का नाश चाहना चाहिए तथा पुण्य का बन्ध ही नही, अनुवन्ध चाहना चाहिए। उससे जो पुण्यबन्ध हो वह सर्व-कल्याण की भावना मे परिणमित होता है। तिरस्कार के पाप से बचने हेतु नमस्कार ही एक अमोघ साधन है।

नमस्कारधर्म की व्याख्याएँ

नमस्कार क्षमा का दूसरा नाम है। भूल होने के पश्चात् उसे सुधार लेने हेतु नम्रता बताने का ही नाम क्षमापना है। अपने द्वारा हुई भूल की क्षमा मागनी तथा दूसरो की भूल को क्षमा करना ही नमस्कार धर्म की आराधना है।

जिस प्रकार अहकार उपकारियो को पहचानने देता नही वैसे ही अपने अपराध को स्वीकार भी करने देता नही। जैसे अहकार उपकारियो को पहचानने नही देता वैसे ही अपने अपराध को भी स्वीकार करने नही देता। जैसे नमस्कार उपकारियो को भूलने नही देता वैसे ही अपने अपराधो को भी भूलने नही देता। उपकार के स्वीकरण की भाति अपराध का स्वीकार भी नमस्कार है। विषयो के प्रति नमनशीलता का त्याग कर परमेष्ठियो के प्रति नमनशीलता का अभ्यास करना भी नमस्कार धर्म है। वाह्यपदार्थों के प्रति तृष्णावान नही वनना तथा आत्मतृप्त रहने का अभ्यास करना भी नमस्कार धर्म है।

जीव अपनी जाति, कुल, रूप, बल, लाभ, वृद्धि, वैभव, यश तथा श्रुतादि के प्रति नम्र है ही। नम्रता से उनके प्रति आदर, रुचि तथा सम्मान वताता ही है, पर वह नमनशीलता धर्म रूप नही होती। पूज्य तत्त्वो के प्रति नम्र रहना ही सच्ची नम्रता है।

सांसारिक पदार्थो के प्रति नमस्कार भाव अनादि कुवासना के योग-से-होता ही है। उसका स्थान परिवर्तन कर मैत्र्यादि के विषयभूत दूसरे जीवो के प्रति, श्री परमेष्ठि भगवान के प्रति तथा आत्मातत्त्व के प्रति नम्र बनना ही धर्म है तथा यही विवेक है। इससे विनय योग्य व्यक्ति के प्रति विनय होता है।

यह विनय ही नमस्कार धर्म रूप बनकर कर्म का क्षय करता है।

उपकारियो को नमस्कार करने से अपने पर स्थित उनके ऋण से मुक्ति होती है। उनके प्रशस्त अवलम्बन से तथा प्रशस्त ध्यान के बल से कर्मक्षय होता है।

बुद्धिबल को विकसित करने हेतु जिस प्रकार अक्षरज्ञान तथा उसके साधनो की आवश्यकता होती है वैसे ही भावना-बल को विकसित करने हेतु नमस्कार धर्म तथा उसके सभी साधनो की आवश्यकता है। न्याय, नीति, क्षमा. सदाचार तथा परमेश्वरभक्ति उसके साधन हैं। वे सभी साधन नमस्कार-भाव को विकसित करते हैं तथा नमस्कार भाव अहंकार भाव का नाश कर परमात्मतत्त्व के प्रति प्रेम उत्पन्न करता है।

श्री पंच परमेष्ठियो मे प्रकटीभूत परमात्मतत्त्व जब अपने नमस्कार भाव का विषय बनता है तब अन्तर मे स्थित परमात्मतत्त्व जाग्रत होता है तथा सकल क्लेश का नाश कर परमानन्द की प्राप्ति करवाता है।

नमस्कार का पर्याय—अहिंसा, संयम एवं तप

अन्तर मे करुणा तथा आचरण मे अहिसा श्रेष्ठ मगल हैं। अहिसा मे दूसरे जीवो के प्रति तात्त्विक नमन भाव है। सयम तथा तप अहिसा की सिद्धि हेतु अनिवार्य है।

पाचो इन्द्रियो को नियमित करने का ही नाम सयम है तथा मन को नियमित रखना ही तप है। इन्द्रियो तथा मन को अंकुश मे रखे बिना अहिसा पाली नही जाती तथा अहिसा-पालन के बिना नमस्कार भाव की पूर्णतया आराधना नही होती।

अहिसा के पालन मे प्रभुआज्ञा की आराधना है। प्रभु-आज्ञा का रहस्य जीव मात्र के आत्मसम स्वीकरण मे है।

आचरण विना की उच्च विचारसरणी भी निष्फल है। विचार का फल आचार है। उसके अभाव मे विचार मात्र वाणी तथा बुद्धि का विलास है। इसी कारण से अहिंसा सयम तथा तप को उत्कृष्ट मगल रूप गिना गया है। जिस प्रकार मैत्री विना अहिंसा शुष्क है वैसे ही अहिंसा रहित मैत्री भी माया है। जैसे वैराग्य रहित सयम शुष्क है वैसे ही सयम रहित वैराग्य भी माया कपट है। जैसे अनासक्ति रहित तप शुष्क है वैसे ही तप रहित अनासक्ति भी आडम्बर मात्र है।

अहिंसायुक्त मैत्री, सयममय वैराग्य तथा तपयुक्त अनासक्ति ही तात्त्विक है।

करुणाभाव का द्योतक

प्रभु के नाम, रूप, द्रव्य तथा भाव इन चारो मे करुणा समाविष्ट है। उसका साक्षात्कार ही आत्मार्थी जीवो का कर्त्तव्य है अन्यथा कृतघ्नता तथा अभक्ति पोषित होती है।

प्रभु के नाम से पाप जाता है तथा पापनाश से दु:ख जाता है। प्रभु की प्रतिमा से भी पाप और दु ख नष्ट होते हैं।

प्रभु का आत्मद्रव्य तो करुणा से समवेत-समेत है ही तथा भावनिक्षेप से तो प्रभु साक्षात् करुणामूर्ति हैं।

इस प्रकार प्रभु की करुणा का ध्यान ही भक्तिभावना की वृद्धि का साक्षात् कारण है।

करुणाभाव शुद्ध जीव का स्वभाव है तथा वह नाम, स्थापना, द्रव्य तथा भाव द्वारा अभिव्यक्त होता है—बाहर प्रकट रूप से दिखता है।

नामादि चार निक्षपो द्वारा श्री अरिहतादि पाँच परमेष्ठियो को होता नमस्कार सभी पापो का तथा दु:खो का नाशकारी होकर करुणाभाव के प्रभाव का द्योतक है तथा उससे भक्तिभाव को बढाने वाला है।

'नमो' पद का रहस्य

'नमो'-में नम्रता है, विनय है, विवेक है तथा वैराग्य भी है, तप स्वाध्याय तथा ईश्वरभक्ति भी है; साथ ही दुष्कृत की गर्हा, सुकृत की अनुमोदना तथा श्री अरिहतादि की शरण भी है।

नमन करना अर्थात् मात्र मस्तक को झुकाना ही नही पर मन को, मन के विचारो को, मन की इच्छाओ को तथा मन की तृष्णाओ को भी नमित करना अर्थात् उनको तुच्छ गिनना है।

मात्र हाथ जोडना ही नही पर अन्तकरण मे एकता-अभेद की भावना करनी चाहिए।

नम्रता का अर्थ है अहभाव का सम्पूर्ण नाश तथा बाह्य विषयो मे अपने अहत्व की बुद्धि का सर्वथा विलय।

शून्यवत् होने से पूर्ण बना जाता है। कुछ होना चाहिए अर्थात् सवसे अलग पडना चाहिए। कुछ भी नही रहना अर्थात् परमात्मतत्त्व में मिल जाना।

समुद्र में रहने वाली बूंद समुद्र की महत्ता भोगती हैं। समुद्र से अलग होकर जब वह अपनेपन का दावा करने जाती है तब वह तुरन्त सूख जाती है उसका अस्तित्व मिट जाता है। 'नमो, पद मे गुप्त रहस्य क्या है यह इसी से प्रकट होता है।

नमस्कार से दर्शन की शुद्धि होती है अर्थात् कर्मकृत अपनी हीनता, लघुता या तुच्छता का दर्शन होता है तथा परमात्म-तत्त्व की उच्चता, महत्ता तथा भव्यता का भाव होता है जिससे अहभाव का फोडा फूट जाता है तथा ममताभाव का मवाद निकल जाता है परिमाण स्वरूप जीव को परम शान्ति का अनुभव होता है।

एकाग्रता से अर्थविचार सहित जप करने वाले के समस्त कष्ट दूर होते है ।

'मननात् त्रायते यस्मात् तस्मान्मंत्रः प्रकीर्तितः ।'

जिसके मनन से रक्षा होती है वह मत्र है ।

मनन अर्थात् चिन्तन मन का धर्म है । मन का लय होने से चिन्ताराशि का त्याग होता है। चिन्ताराशि के त्याग से निश्चितता रूपी समाधि प्राप्त होती है ।

मन जब सभी विषयो की चिन्ता से रहित होता है तथा आत्मतत्त्व मे विलीन होता है तब वह समाधि प्राप्त करता है ।

—नवकार के प्रथम दो पदो मे मुख्य रूप से सामर्थ्ययोग को नमस्कार है क्यो श्री अरिहृत तथा सिद्धो मे अनन्त सामर्थ्य-वीर्य प्रकट हुआ है । बाद के तीन पदो मे प्रधान रूप से शास्त्रयोग को नमस्कार है क्योकि आचार्य, उपाध्याय तथा साधु मे वचनानुष्ठान निहित है । अन्तिम चार पदो मे इच्छायोग को नमस्कार है क्योकि उसमे नमस्कार का फल वर्णित है । फल श्रवण से नमस्कार मे प्रवृत्त होने की इच्छा होती है ।

श्री नवपदो मे स्थित भिन्न २ प्रकार का नमस्कार यदि ध्यान मे रख कर किया जाय तो वह तुरन्त सजीव एव प्राणवान् बनता है ।

ज्ञानपूर्वक, श्रद्धापूर्वक एव लक्ष्यपूर्वक प्रमाद छोड कर यदि नमस्कार महामत्र का आराधन किया जाय तो वह अचिन्त्य चिन्तामणि एव अपूर्ण कल्पवृक्ष के समान फलप्रद बनता है

चिरकाल का तप, बहुत भी श्रुत एव उत्कृष्ट भी चारित्र यदि भक्ति शून्य हो तो वे अहंकार के पोषक बन अधोगति का सर्जन करते हैं । भक्ति का उदय होने से वे सब कृतकृत्य होते हैं । मत्र के ध्यान से एव जाप से बारबार प्रभु के नाम का एव

मंत्र का पाठ करने से चित्त में भक्ति स्फुरित होती है।

वाह्यपदार्थ वाह्यक्रिया की अपेक्षा रखते है परन्तु सूक्ष्मतम तथा जीव मात्र मे सत्ता रूप मे विराजमान परमात्मा की प्राप्ति विवेक, विचार, ज्ञान तथा भक्ति रूपी अन्तरंग साधनों से होती है।

स्नेह रूपी तेल से भरित ज्ञानदीप मनमन्दिर में प्रकट करने से देहमन्दिर में विराजमान अन्तर्यामी परमात्मा के दर्शन होते है अत: दीर्घ काल पर्यन्त आदर सहित सतत अभ्यास की जरूरत है।

वह अभ्यास मन्त्र के जाप द्वारा तथा उसके अर्थ की भावना द्वारा किया जा सकता है। इस प्रकार श्री नवकारमन्त्र उसकी अर्थभावना सहित जब आराधित होता है तब वह अवश्य भक्तिवर्द्धक बनता है तथा बढी हुई भक्ति मुक्ति को समीपवर्तिनी कर देती है।

॥ शिवमस्तु सर्वजगत: ॥

*

मंगल भावना

खामेमि सव्वजीवे, सव्वेजीवा खमन्तु मे।
मित्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झ न केणई ॥१॥

—जगत के सभी जीवो से मैं क्षमा मांगता हूँ। उनसे मेरे अपराधो की क्षमा मागता हूँ। सभी जीव मुझे क्षमा प्रदान करो –यह प्रार्थना करता हूँ, मेरा सभी जीवो के साथ मैत्री-भाव है, मेरा किसी के साथ वैर विरोध नही है।

मा कार्षीत् कोऽपि पापानि, मा च भूत कोऽपि दुखितः।
मुच्यतां जगदप्येषा, मतिर्मैत्री निगद्यते ॥२॥

कोई भी प्राणी पाप मत करो, कोई भी जीव दुखी नही हो, यह सारा जगत् कर्मवन्धन से मुक्त हो, ऐसी बुद्धि को मैत्री-भाव कहा जाता है।

शिवमस्तु सर्वजगत. परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः।
दोषा. प्रयान्तु नाशं सर्वत्र सुखी भवतु लोक ॥३॥

जगत् के सर्वजीवो का कल्याण हो, सभी प्राणी परहित सम्पादन करने वाले हो, सभी के दोष नष्ट हो जाय तथा सर्वत्र समग्र लोक सुखी हो।

*

परिशिष्ट

अकारादि क्रम से –

अष्टप्रवचनमाता—पांच समिति एवं तीन गुप्ति को जैन शास्त्रो में अष्टप्रवचनमाता का सूचक नाम दिया गया है। जिस प्रकार माता अपने बालक का धारण पोषण एवं रक्षण करती है वैसे ही समिति व गुप्ति के ये आठ प्रकार प्रवचन अर्थात् चारित्र रूपी वालक का धारण, पालन व पोषण करती हैं।

आस्रव—कर्मो का आगमन द्वार।

उपयोग—जीव का चेतनामय व्यापार।

कषाय—जीव के शुद्ध स्वरूप को कलुपित करने वाली वृत्तियाँ।

कर्म—आत्मा के शुद्ध ज्ञानादि गुणो को आच्छादित करने वाले कर्म आठ प्रकार के हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय वेदनीय, मोहनीय आयुष्य, नाम, गोत्र एवं अन्तराय

गणधर—तीर्थंकर भगवन्त के मुख्य शिष्य।

गुप्ति—मन, वचन एव काया का नियमन। ये तीन है मन.गुप्ति, वचनगुप्ति एवं कायगुप्ति,

गुण और पर्याय—द्रव्य के सहवर्ती धर्म को गुण एवं द्रव्य की क्रमवर्ती अवस्था को पर्याय कहते हैं।

चौदहगुणस्थानक—आत्मा के गुणो का क्रमिक विकास वताने के लिए जैनदर्शन ने चौदह गुणस्थानको का निरूपण किया है। यह आत्मा के विकास का क्रम है।

त्रिकरण योग—करना, करवाना एवं अनुमोदन करना।

द्रव्यप्राण—द्रव्यप्राण के दस भेद हैं, स्पर्श, रस, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, मनोबल, वचनबल, कायबल, श्वासोच्छ्वास एव आयुष्य।

नव तत्त्व—जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव सवर, निर्जरा, वध, एव मोक्ष ये नवतत्त्व है।

निगोद—जीव की एक निकृष्ट अवस्था।

परिषह—संवर के पांचवे प्रकार में परिषह आता है। धर्ममार्ग मे दृढ रहने तथा कर्मबन्धनो का विध्वस करने के लिए जो-जो स्थिति समभावपूर्वक सहन करने योग्य है उसे परिषह कहते है।

भावप्राण—ज्ञान, दर्शन, चारित्र एव वीर्य ये चार भाव प्राण हैं। इन्हे अनन्तचतुष्टय भी कहते हैं।

मिथ्यात्व—गलत मान्यता।

मिथ्याभिनिवेश—कदाग्रह।

स्कन्ध—पौद्गलिक पिण्ड।

सवर—जीव मे कर्म के आगमन को रोकने वाला।

समिति—सम्यक् प्रकार की चेष्टा। ये पाच हैं—एवं जीवन का प्रत्येक कार्य उपयोगपूर्वक करने की शिक्षा देती है।

ज्ञान—जैनदर्शन मे ज्ञान पाच प्रकार का माना गया है—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन.पर्याय एवं केवल ज्ञान।

*

नमस्कार महामंत्र पर उपलब्ध

हिन्दी संस्करण

नमस्कार महामंत्र के अनुचिन्तन की एक और कड़ी

"परमेष्ठि नमस्कार"

का हिन्दी सस्करण शीघ्र प्रकाशित हो रहा है। इस पुस्तक मे पू० प० श्री भद्रकर विजयजी महाराज साहब ने अनेक दृष्टिकोणो से नमस्कार महामन्त्र पर गम्भीर चिन्तन किया है।

* * *

नमस्कार महामन्त्र को समझने के लिए तथा उसकी आराधना के लिए सभी स्तरो के साधको के लिए उपयोगी एक और अनुपम प्रकाशन।

नमस्कार चिन्तामणि

लेखक :

पू० मुनिराज श्री कुन्दकुन्द विजयजी

*